जुलाई–दिसंबर, 2020

अंक-04

वन अनुसंधान ई-पत्रिका

वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

संरक्षक
अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

उप–संरक्षक
नीलिमा शाह
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक मंडल

मुख्य संपादक
डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी
रसायन विज्ञान एवं जैव पूर्वेक्षण प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपादक एवं समन्वयक
श्री रामबीर सिंह
वैज्ञानिक–डी
विस्तार प्रभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सहायक संपादक
श्री शंकर शर्मा
सहायक निदेशक (रा.भा.)
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

रचना एवं अभिन्यास
अमोल राऊत
तकनीकीय आर्टिस्ट
वर्गीकरण वनस्पति शाखा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्रकाशन
हिंदी अनुभाग
वन अनुसंधान संस्थान
डाकघर– न्यू फॉरेस्ट, देहरादून – 248006 (उत्तराखंड), भारत

(पत्रिका में व्यक्त तथ्य, आँकड़ें और विचार रचनाकारों के अपने हैं, सम्पादक मंडल का इनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।)

निदेशक की कलम से ....

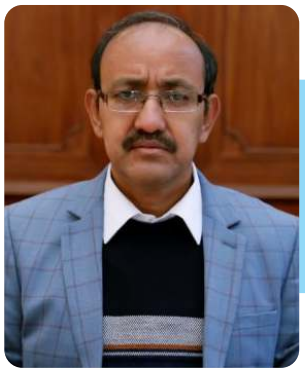

अरुण सिंह रावत
निदेशक
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

'वन अनुसंधान ई–पत्रिका' के अंक–04 के समय पर प्रकाशन के लिए संस्थान के समस्त परिवार की ओर से आप सभी पाठकगणों को हार्दिक शुभकामनाएं। कोविड–19 के कारण जब रोजमर्रा के मानव गतिविधियों में विराम आ गया था उस समय प्रकृति ने अपने आप को चिरपरिचित परिवेश में ढाल लिया था।

पत्रिका में वानिकी अनुसंधान से संबंधित लेखों को स्थान देना अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। यह पत्रिका हिंदी भाषा में प्रकाशित होने से इसमें व्यक्त जानकारियां आमजनों तक पहुँचाने में सक्षम है। हमारी यही कोशिश है कि भविष्य में यह पत्रिका निरंतर ज्ञान की वाहिका बनी रहें। कोई भी पत्रिका भाषा के प्रचार–प्रसार के लिए एक सशक्त माध्यम है। आज के इस विषम परिस्थिति में ज्ञान के दोहन के लिए हम इन पत्रिकाओं के ऊपर ज्यादा निर्भर है।

पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े सभी सदस्यों का मैं आभार प्रकट करता हूँ तथा पत्रिका के बेहतर भविष्य की कामना करता हूँ।

अरुण सिंह रावत
निदेशक

कुलसचिव की कलम से ....

नीलिमा शाह
कुलसचिव
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

संपूर्ण देश फूलों की माला की तरह एकता के धागे में पिरोकर एक रखने में सक्षम है हमारी राजभाषा हिन्दी। इसी राजभाषा हिन्दी में वन अनुसंधान ई–पत्रिका आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रही हूँ। वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून वानिकी अनुसंधान का एक प्रमुख केन्द्र है। कई वर्षों से वैज्ञानिकों, अनुसंधान कर्ताओं द्वारा इस संस्थान में अनेकों शोध कार्य किए गए हैं। अनुसंधान कार्यों का अधिक से अधिक लाभ लेने के लिए इनका प्रचार–प्रसार किया जाना अति आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह पत्रिका नवीन अंक के साथ आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

पत्रिका के इस अंक में हमने विविधता पूर्ण शोध कार्य को आप सब के सम्मुख रखने का प्रयास किया है। इसके लिए पाठकों, सभी रचनाकारों एवं अपनी बहूमूल्य प्रतिक्रियाएं एवं संदेश भेजने वाले उच्चाधिकारियों के हम कृतज्ञ हैं। आशा है पत्रिका का यह अंक भी आपको पठनीय एवं उपयोगी प्रतीत होगा।

नीलिमा

नीलिमा शाह
कुलसचिव

मुख्य संपादक की कलम से ....

डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

आगामी नव वर्ष 2021 की शुभकामनाओं के साथ वन अनुसंधान ई–पत्रिका के अंक–4 को पाठकों से साझा करते हुये मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है। वर्ष में दो बार प्रकाशित होने वाली इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य वानिकी से संबंधित विभिन्न विषयों पर आलेखों को हिन्दी भाषा के माध्यम से वानिकी से जुड़े समस्त हितधारकों के समक्ष उनकी जानकारी और उपयोग के लिए प्रस्तुत करना है। इस ई–पत्रिका में वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून सहित भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् के अन्य संस्थान तथा केन्द्रों के वैज्ञानिकों, शोधार्थी, तथा वानिकी सेवा से जुड़े अधिकारियों एवं कर्मचारियों के लेख समाविष्ट किये जाते हैं।

ई–पत्रिका के इस अंक में वानिकी से जुड़े विविध विषयों पर लेख सम्मिलित किये गये हैं। देश इस वर्ष कोरोना की विश्व व्यापी महामारी से जूझ रहा है। भारत में पाये जाने वाले विभिन्न औषधीय पौधों के महत्व को इस महामारी के नियन्त्रण में सहायक पाया गया है। कोविड–19 के नियन्त्रण में प्रयोग होने वाली प्रभावी पारम्परिक औषधियों से सम्बन्धित लेख इस अंक का मुख्य आकर्षण है। अन्य रोचक लेखों में औषधीय पौधे यथा ऐलोवेरा, अश्वगंधा, बहुउद्देशीय वृक्ष मेलिना आर्बोरिया, विलुप्त होते पौधे तथा वन्य जीव, बाँस उत्पादन तथा इसकी किसानों की आय बढ़ाने में तथा मृदा संरक्षण में भूमिका, केंचुआ खाद, प्रदूषित होती मृदा के स्वास्थ्य संतुलन की आवश्यकता तथा यूकेलिप्टस वृक्षारोपण प्रबंधन के लिये झुलसा रोग फैलाने वाली कैलोनेक्ट्रिया फंजाई की विभिन्न प्रजातियों की पहचान से सम्बन्धित जानकारी संकलित की गयी है।

मैं, इस अंक के सभी सम्मानित लेखकों तथा पत्रिका के संपादन कार्य से जुड़े सभी सहयोगियों का हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

डॉ. वी.के. वार्ष्णेय
वैज्ञानिक–जी

वन अनुसंधान ई–पत्रिका
जुलाई–दिसंबर, 2020

विषय सूची

क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	निदेशक की कलम से		
	कुलसचिव की कलम से		
	मुख्य संपादक की कलम से		
क्र.सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1	कोविड–19 के नियंत्रण में प्रयोग होने वाली प्रभावी पारम्परिक औषधियाँ	आलोक यादव, विनीत तिवारी, सत्यव्रत सिंह, विनय जायसवाल	1-3
2	अलोवेरा है मेरा नाम	जगदीश चन्द्र	4-7
3	अश्वगंधा *(विथानिया सोमनिफेरा)* : एक बहुउपयोगी औषधीय पौधे की व्यावसायिक खेती	अजय गुलाटी एवं रामबीर सिंह	8-10
4	एलेक्ट्राचित्रा कुटैन्सिस : औषधीय महत्व की एक लुप्तप्राय परजीवी प्रजाति	सत्यव्रत सिंह, आलोक यादव	11-12
5	उत्तरी भारत में यूकेलिप्टस के झुलसा रोग से संबंधित कैलोनेक्ट्रिया फंजाई की प्रजातियाँ	रत्नाबोली बोस, डॉ.शैलेष पाण्डेय, पूजा जोशी, सब्यसाची बनर्जी, डॉ. अमित पाण्डेय, अदिति सैनी, मनीष सिंह भण्डारी	13-14
6	*मेलिना आर्बोरिया रोक्सब:* पूर्वोत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण बहुउद्देश्यीय वृक्ष	तारा भूयाँ, डॉ. मनीष कुमार सिंह एवं डॉ. पापोरी बोरपुजारी	15-18
7	बाँस उत्पादन : कृषकों की समृद्धि का आधार	डॉ. अजय ठाकुर, राकेश प्रकाश एवं संगीता भट्ट	19-20
8	हिमालयी मृदा के संरक्षण में बांज के वृक्षो की भूमिका	डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल	21-22
9	मृदा स्वास्थ्य संतुलन : एक चुनौती	डॉ. प्रतिमा पटेल	23-24
10	केंचुआ खाद – एक संक्षिप्त जानकारी	पूर्णिमा श्रीवास्तव एवं राजेश कुमार मिश्रा	25-27
11.	विलुप्त होता वन्य–जीव जगत	राजेश कुमार मिश्रा	28-31
	जुलाई–दिसंबर, 2020 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम		32-33

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-04 जुलाई–दिसंबर,2020

कोविड–19 के नियंत्रण में प्रयोग होने वाली प्रभावी पारम्परिक औषधियाँ

आलोक यादव, वैज्ञानिक–ई, विनीत तिवारी, परियोजना सहायक, सत्यव्रत सिंह, परियोजना सहायक एवं विनय जायसवाल, परियोजना सहायक
पारि–पुर्नस्थापन वन अनुसंधान केन्द्र, प्रयागराज

आज पूरी दुनियां जिस महामारी से जूझ रही है उसे एक नाम दिया गया है कोविड–19 (कोरोना)। ये महामारी इतनी भीषण और जानलेवा हो सकती है, शायद ही किसी ने सोचा होगा कि इस तकनीकी से लबरेज दुनिया जो कि विकास के क्षेत्र में विस्तार इतनी तेजी से कर रही है, कि कहीं न कहीं एक प्रतियोगिता सी दिखाई पड़ती है। चाहे वो मूलभूत सुविधाएं हो, चिकित्सा का, शिक्षा का, प्रत्येक देशों में इनमें विकास की होड़ सी लगी है। पर क्या किसी ने ये सोचा था कि यह सब रूक जाऐगा। किसी एक देश ही नहीं अपितु पूरे विश्व में यह विस्तार ठहर जाऐगा, गाड़ीयाँ सड़कों पर नहीं चलेगी, दुकानें बाजार सब ठप पड़ जाऐगा। ऐसी कल्पना सिर्फ कहानियों में सुनते थे। पर यह वास्तविकता में हुआ। एक ऐसी बीमारी जो लोगों में इतनी तेजी से फैलती है कि कल्पना करना भी मुश्किल है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (HO) ने कोरोना वायरस को महामारी घोषित कर दिया है। कोरोना वायरस बहुत सूक्ष्म लेकिन घातक वायरस है। कोरोना वायरस मानव के बाल की तुलना में 900 गुना छोटा है, लेकिन कोरोना का संक्रमण दुनियाभर में तेजी से फ़ैल रहा है। कोरोना वायरस का संबंध वायरस के ऐसे परिवार से है जिसके संक्रमण से जुकाम से लेकर सांस लेने में तकलीफ जैसी समस्या हो सकती है। इस वायरस के बारे में पहले कभी नहीं सुना गया है। इस वायरस का संक्रमण दिसंबर 2019 में चीन के वुहान में शुरू हुआ था। डब्लूएचओ के मुताबिक बुखार, खांसी, सांस लेने में तकलीफ इसके लक्षण हैं। अब तक इस वायरस को फैलने से रोकने वाला कोई टीका नहीं बना है,पर इसका प्रकोप किस दवा से खत्म होगा? इस सवाल का जवाब तलाशने के लिए दुनिया भर के शोधकर्ता मेहनत कर रहे हैं। अभी तक एक बात तो साफ है, कि जिन लोगों की रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत है उन पर कोविड–19 का हमला घातक नहीं होता। जब तक इस महामारी की दवा वैज्ञानिकों द्वारा नहीं खोज ली जाती तब तक हम घरेलू औषधियों से अपनी प्रतिरोधक क्षमता मजबूत करके इस बीमारी से बचे। तो आइए जानते है कि इसमें किस–किस औषधि का प्रयोग करे।

दालचीनी :

जगत– प्लान्टी

गण– लाउरेल्स

कुल– लाउरेसी

चित्र–1: दालचीनी

जाति– सिनेमोमम

प्रजाति– सिनेमोमम वेरम

दालचीनी एक छोटा सदाबहार पेड़ है, यह श्रीलंका एवं दक्षिण भारत में बहुतायत में मिलता है। इसकी छाल मसाले की तरह प्रयोग होती है। इसमें एक अलग ही सुगन्ध होती है, जो कि इसे गरम मसालों की श्रेणी में रखती है।

काली मिर्च :

जगत–प्लान्टी

कुल– मारटिएल्स

जाति– सिजियम

चित्र–2: काली मिर्च

प्रजाति– सिजियम एरोमेटिकम

वनस्पति जगत् में लता सदृश बारहमासी पौधे के अधपके और सूखे फलों का नाम काली मिर्च है। काली मिर्च के पौधे का मूल स्थान दक्षिण भारत ही माना जाता है। भारत से बाहर इंडोनेशिया, बोर्नियो, इंडोचीन, मलय, लंका और श्याम इत्यादि देशों में भी इसकी खेती की जाती है।

अदरक :

जगत– प्लान्टी

गण– जिन्जिवेरल्स

कुल– जिन्जिवेरेसी

जाति– जिन्जिबर

चित्र–3: अदरक

प्रजाति– जिन्जिबर ऑफिसिनेल

अदरक *जिन्जिबेरेसी* कुल का पौधा है। अधिकतर उष्णकटिबंधीय और शीतोष्ण कटिबंध भागों में पाया जाता है। यह दक्षिण एशियाए पूर्वी अफ्रीका और कैरेबियन में भी पैदा होता है।

सूखे हुए अदरक को सौंठ (शुष्ठी) कहते हैं। भारत में यह बंगाल, बिहार, चेन्नई, मध्य प्रदेश कोचीन, पंजाब और उत्तर प्रदेश में अधिक उत्पन्न होती है।

तुलसीः

जगत– प्लान्टी

गण– ऍस्टारिड्स

कुल– लैमिएशी

जाति– टेन्यूफोल्रम

प्रजाति– ऑसीमम सैक्टम

चित्र–4: तुलसी

ऑसीमम सैक्टम) एक द्विबीजपत्री तथा शाकीय, औषधीय पौधा है। यह झाड़ी के रूप में उगता है हैं। गुण, धर्म की दृष्टि से काली तुलसी को ही श्रेष्ठ माना गया है। तुलसी ऐसी औषधि है जो ज्यादातर बीमारियों में काम आती है। इसका उपयोग सर्दी–जुकाम, खॉसी, दंत रोग और श्वास सम्बंधी रोग के लिए बहुत ही फायदेमंद माना जाता है।

नींबूः

जगत– प्लान्टी

गण– सापीन्दालेस्

कुल– रूटेसी

जाति–सिट्रस

प्रजाति– सिट्रस सिलिमन

चित्र–5: नींबू

छोटा पेड़ अथवा सघन झाड़ीदार पौधा है। नीबू अधिकांशतः उष्णदेशीय भागों में पाया जाता है। इसका आदिस्थान संभवतः भारत ही है। यह हिमालय की उष्ण घाटियों में जंगली रूप में उगता हुआ पाया जाता है विटामिन सी से भरपूर नींबू स्फूर्तिदायक है।

हल्दीः

जगत– प्लान्टी

गण– जिन्जिबेरल्स

कुल– जिन्जिबेरेंसी

जाति– कुरुकुमा

प्रजाति–कुरुकुमा लौंगा

चित्र–6: हल्दी

लैटिन नामः करकुमा लौंगा, अंग्रेजी नामः टरमरिक, पारिवारिक नामः जिन्जिबेरेसी

औषधि ग्रंथों में इसे हल्दी के अतिरिक्त हरिद्रा कुरकुमा लौंगाए वरवर्णिनी गौरी क्रिमिघ्ना योशितप्रीया हट्टविलासनी हरदल कुमकुम टर्मरिक नाम दिए गए हैं। भारत दुनिया में हल्दी उगाने के मामले में प्रथम स्थान पर है। हल्दी कई सालों से एक एंटीसेप्टिक की तरह उपयोग हो रहा है कही पर भी कटे हुए पर हल्दी लगाने से खून बंद हो जाता है तथा घाव भी जल्दी भर जाता है।

लौंगः

जगत– प्लान्टी

गण– मिरटेल्स

कुल– मिरटेसी

जाति– सिजियम

प्रजाति– सिजियम ऐरोमेटिकम

चित्र–5: लौंग

वानस्पतिक नामः सीजयगीउमारोमेटिकुम अंग्रेजीः क्लोव मटेंसी कुल मिर्टकेआ के श्यूजीनिया कैरियोफ़ाइलेटाश नामक मध्यम कद वाले सदाबहार वृक्ष की सूखी हुई पुष्प कलिका है। यह उष्णकटिबंधी प्रदेशों में बहुतायत से प्राप्य हैं। सुमात्रा, जमैका, ब्राजील भारत आदि में बहुतायत उगाया जाता है।

गिलोयः

जगत– प्लान्टी

गण– रेननकुलेल्स

कुल– मेनीसिपरमेसी

जाति– टीनोस्पोरा

प्रजाति– टीनोस्पोरा कार्डीफोलिया

चित्र–7: गिलोय

; गिलोय की एक बहुवर्षिय लता होती है। इसके पत्ते पान के पत्ते की तरह होते हैं। नीम, आम्र के वृक्ष के आस–पास भी यह मिलती है। जिस वृक्ष को यह अपना आधार बनाती है उसके गुण भी इसमें समाहित रहते हैं। इस दृष्टि से नीम पर चढ़ी गिलोय श्रेष्ठ औषधि मानी जाती है।

इन सब का प्रयोग करके हम निश्चित तौर पर इस महामारी से खुद को तथा अपने परिवार समेत दूसरों को बचा सकते है। सरकार ने कई तरह के गाइड लाइन (मास्क अनिर्वाय, सोशल डिस्टेसिंग, अनलॉक) आदि जारी करके अलग–अलग तरीके से प्रचार प्रसार करके लोगों को समझाया है, और जनता ने उल्लेखनीय भागीदारी करके यह दर्शाया है, कि जनता इसके प्रति सजग है।

क्र. सं.	सामाग्री	प्रभावी तत्व
1.	दालचीनी	सिनेमेल्डिहाइड
2.	काली मिर्च	पाइपेरिन
3.	अदरक	जिंन्जेरोल
4.	तुलसी	यूजेनॉल
5.	नीबू	साइट्रिक अम्ल
6.	हल्दी	कुरकुमिनोइड+मिश्रण)
7.	लौंग	यूजेनॉल
8.	गिलोय	एल्केलॉइड्स, टर्पेनॉइड्स, लिगनेन्स, स्टेरॉयड

निष्कर्ष– प्राचीन भारतीय चिकित्सा में वनस्पतिक औषधियों के माध्यम से प्रभावी उपचार किये जाते रहे हैं। आज भी अनेक रोगों के उपचार में इन वनस्पतिक औषधियों (दालचीनी, कालीमिर्च, अदरक, तुलसी, निम्बू, हल्दी, लौंग, गिलोय) के उपयोग से हमारी प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, जिससे कोविड–19 (कोरोना वाइरस) कम प्रभावी होती है।

आलोक यादव
वैज्ञानिक–ई

लेखकों के लिए नियम–निर्देशः

•वन अनुसंधान ई–पत्रिका के आगामी अंकों के प्रकाशन हेतु वानिकी से संबंधित अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएं ई–मेल **hindiofficer@icfre.org** पते पर भेजने का कष्ट करें।

•रचनाएं यथासंभव टाइप की हुई हों, रचनाकार का पूरा नाम, पद एवं संपर्क विवरण का उल्लेख अपेक्षित है।

•लेखों में शामिल छायाचित्र तथा आँकड़ों से संबंधित आरेख स्पष्ट होने चाहिए।

•वन अनुसंधान ई–पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में निहित विचारों के लिए संपादक मंडल अथवा हिंदी अनुभाग उत्तरदायी नहीं होगा और इसके लिए पूरी की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेखक की ही होगी।

•प्रयुक्त भाषा सरल, स्पष्ट एवं सुवाच्य हिंदी भाषा हो।

स–आभार
संपादक मंडल

अलोवेरा है मेरा नाम

जगदीश चन्द्र भा.व.से. प्रधान मुख्य वन संरक्षक एवं प्रबंध निदेशक
वन विकास निगम, हरियाणा, पंचकुला।

मैं अलोवेरा हूँ। सच बोलू तो दुनिया भर में मेरे सौ से भी ज्यादा नाम हैं। शायद ही पादप जगत में ऐसा कोई पौधा हो जिसके इतने नाम हों। लेकिन अक्सर मुझे लोग ग्वारपाठा, घृतकुमारी, घी–कवार, लिली आफ डैजर्ट (मरुस्थल की लिली) नामों से पुकारते हैं। मेरे इतने नाम और चर्चा में रहने के कारण यह है कि एक लंबे अरसे से मैं मानवता की सेवा करता आ रहा हूँ।

पिछले करीब डेढ़ दशक से मैं खूब चर्चा हूँ। मेरे चर्चा में होने का कारण है मुझ में मौजूद जादुई औषधीय गुण। यदि आप इतिहास के पन्ने पलटें तो पाएंगे कि करीब चार हजार साल से मैं मानव की बराबर सेवा करता आ रहा हूं। इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि मिश्र में 1500 ईश्वी पूर्व से ही घेरलू वैद्य के रुप में मैं अपनी सेवाएं देता रहा हूँ। भारत की बात करुं तो करीब 400 ईश्वीं पूर्व तक मैं अपनी सेवाएं देने यहां पहुंच गया और भारत समेत चीन में भी एक घरेलू वैद्य के रुप में जानी मानी हस्ती बन गई। देखने में मैं अजीब सा पौधा लगता हूँ। लेकिन मुझ में समाये गुणों का कोई अन्त नहीं। सच पूछो तो मैं कुदरत का मानव को एक तोहफा हूँ। यदि मुझे सर्व गुण सम्पन्न संजीवनी बूटी की संज्ञा दी जाए तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। आप किसी भी रोग का नाम लें, मैं उसमें रामबाण औषधि का काम करता हूँ।

चित्र–1 : अलोवेरा

यदि आप मेरे जादुई गुणों पर नजर डालें तो पाएंगे कि दुनिया भर में मेरा प्रयोग कील, मुहांसे, फोड़े, फुंसी, रुखी–सूखी त्वचा, धूप के थपेड़ों से झुलसी त्वचा, सन बर्न यानी पराबैंगनी किरणों का असर कम करना, झुरियाँ दूर करने, त्वचा को चमक देने, चेहरे के दाग–धब्बों, जोड़ों का दर्द, दांत का दर्द, मधुमेह, फटी एड़ियों, आंखों के काले घेरों, खट्टे डकार यानी अम्लता, बवासीर, पेट की गड़बड, अपच, पेट की सफाई करने, शरीर की सुरक्षा प्रणाली को चुस्त दुरुस्त रखने, बुढ़ापा रोकने, सूजन रोकने, घाव भरने, कब्ज दूर करने, मुंह व आंतों के फफोले दूर करने, शरीर से जहरीले प्रदार्थ बाहर फैंकने, सामान्य दुर्बलता को दूर करने, पेशाब संबंधी रोगों जैसे–पेशाब में खून आना, पेशाब में जलन होना, त्वचा की खुजली रोकने, खांसी, जुकाम, नींद न आना, बाल झड़ने, लाल आंख, गैस विकार, दिल की बीमारी, उच्च रक्तचाप, स्वतंत्र रैडीकल्ज यानी ऑक्सीजन खाने वाले मुक्त मूलक प्रदार्थो को बाहर फैंकने, कृमि नाम, श्वसन प्रणाली को ठीक–ठाक रखने, झुलसी चमड़ी को ठीक करने, जीवाणुओं एवं विषाणुओं के अतिक्रमण को रोकने, मोटापा कम करने व खून में वसा की मात्रा कम करने आदि में मेरा प्रयोग सदियों से हो रहा है। वैसे तो मेरे गुणों की सूची लम्बी है, लेकिन इस सूची को मैं यहीं विराम देता हूँ। रोग निवारण के गुण कूट–कूट कर भरे होने के कारण ही मुझे आयुर्वेद में "घृतकुमारी" की उपाधि और "महाराजा" का स्थान दिया गया है।

दरअसल करीब आधे दशक से पहले तक मुझे घरेलू वैद्य या फिर देसी दवा के रुप में ही मान्यता प्राप्त थी। सच पूछो तो मेरे जादुई गुणों का कोई ठोस आधार नहीं था। लेकिन मेरे करिश्माई गुणों का पता लगाने का जुनून शोधकर्ताओं में कुछ इस कदर चढ़ा कि उन्होंने मेरे जादुई गुणों पर ढेर सारे शोध कर डाले। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने मेरे जादुई गुणों पर ठोस वैज्ञानिक आधार की मोहर लगा दी। आज मेरे जादुई गुणों का जादू सर चढ़कर बोल रहा है। बात चाहे दादी मां के घरेलू नुस्खों की हो, घरेलू वैद्य की या फिर आधुनिक वैज्ञानिक आधार प्रशिक्षित शल्य चिकित्सक की– सब मेरे गुणों के मुरीद हैं।

यदि मैं अपने जादुई गुणों की चर्चा को थोड़ा आगे बढ़ाऊंगा और ठोस वैज्ञानिक आधार की बात करुंगा। इसमें

कोई दो राय नहीं कि मैं शरीर से विषैले पदार्थ बाहर फैंकता हूं। लेकिन शोधकर्ताओं ने इस पहेली के रहस्य की परत भी खोल दी है। दरअसल आज के युग में हम विषाक्त हवा लेते हैं, दूषित पानी पीते हैं और कीटनाशी दवाओं से लदा भोजन खाते हैं। ये विषैले पदार्थ हमारे शरीर में जमकर बैठकर पहले तो बेचैनी पैदा करते हैं और बाद में सूजन का रुप धारण कर लेते हैं। यह सूजन हमारी सुरक्षा प्रणाली पर मार करती है क्योंकि सूजन से निपटने हेतु सुरक्षा तंत्र को ज्यादा जोर लगाना पड़ता है और वह कमजोर पड़ जाता है। उधर शरीर में विषैले प्रदार्थो की उपस्थिति के चलते प्रोटीन को पचाने की प्रकिया ढीली पड़ जाती है। यह अधपची या अपच प्रोटीन आंतों से फिसल कर खून में चली जाती है। शरीर इस अपच प्रोटीन को विदेशी धावा मानती है और सुरक्षा प्रणाली इससे लड़ते–लड़ते कमजोर हो जाती है। यही अपच प्रोटीन गुर्दों को धीरे–धीरे क्षति पहुँचाती है। आज हमारे देश की जनता का एक बड़ा भाग यूरिक एसिड और उससे होने वाले रोग "गाऊट" (एक प्रकार का गठिया) से जूझ रहा है। इसका मुख्य कारण अपच प्रोटीन का रक्त वाहन प्रणाली में घुस जाना है। हमारी सुरक्षा प्रणाली की टी–कोशिकाएं विदेशी प्रोटीन से लड़ने के लिए वहां पहुंच जाती है। विदेशी प्रोटीन को तोड़ने–फोड़ने के लिए टी–कोशिकाएं ऑक्सीजन का इस्तेमाल करती हैं। इससे कोशिका कमजोर हो जाती है। मुक्त मूलक कोशिका के भीतर घुसकर उसकी ऑक्सीजन पी जाते हैं और कोशिका को तोड़ फोड़कर उसमें जहर भेज देते हैं। इससे कोशिका मर जाती है। शरीर की सूजन कोशिका की बाहरी झिल्ली को बुरी तरह से नुकसान पहूँचाती है। जी हां, यही है समय से पहले बूढ़े हो जाने की प्रक्रिया। बता दूं कि यह सब कोशिका के भीतर होता है। इसके चलते कोशिका को ऑक्सीजन की भूख की कमी से रु–ब–रु होना पड़ता है। बात यहीं खत्म नहीं होती। बता दूं कि अपच प्रोटीन शरीर में हानिकारक कैंडिड नामक फफूंद और परजीवी के पनपने हेतु भोजन का काम करती है। यह फफूंद और परजीवीयों मानव शरीर से रस चूसकर उसे खोखला और कमजोर बना देते हैं।

मैं ऊपर्युक्त शरीर विनाश की सुई को उल्टा घुमाने का मादा रखता हूँ। इसका ठोस वैज्ञानिक आधार यह है कि मुझ में म्यूकोपौलीसैकराईडज नाम के रासायन पाए जाते हैं जो कि मानव शरीर की सुरक्षा प्रणाली को सामान्य एवं चुस्त–दुरुस्त रखने में सक्षम है। मुक्त मूलकों से लोहा लेता हूँ। दरअसल मुझ में एस.ओ.डी. यानी सुपर ऑक्साईड डिस्टूमेज का पता लगाया गया है, जो एक सुपर एंटीआक्सीडैंट है। यह शरीर के भीतर पैदा हुए मुक्त मूलकों से लोहा लेकर उन्हें खदेड़ता है। इस तरह से जल्दी से बुढ़ापा नहीं आता। इसके सिवाए ग्लैक्टामैनन एवं ऐसीमैनन नामक रसायन भी मुझ में है जो कि मानव शरीर में सुरक्षा प्रणाली की कोशिकाएं पैदा करते हैं और शरीर को ऐसे विषैले पदार्थों से लोहा लेने में सक्षम बनाते हैं। गुणों के ठोस वैज्ञानिक आधार की बात लंबी है लेकिन इस चर्चा को मैं यहीं विराम देता हूँ।

यह तो रही बात मानव सेवा की। लेकिन बता दूं कि इन दिनों जादुई गुणों का जादू इस कदर सर चढ़कर बोल रहा है कि अब मेरी सेवाएँ पशुधन एवं पक्षियों को चुस्त–दुरुस्त रखने में भी बराबर ली जा रही हैं। पशुओं में त्वचा रोग जैसे एलर्जी, मुहांसे, फिंसी फफूंद अतिक्रमण, त्वचा के फफोले एवं खुजली, बाल झड़ना, शरीर पर घाव होना, जल जाना, अपच होना, शरीर की भीतरी सूजन, मुंह के छाले, उल्टी, दस्त, जिंजीवाईटिस यानी मसूड़ों की सूजन, डर्मेटाईटिस यानी जिल्द की सूजन, शरीर के सुरक्षा तंत्र की समस्याएं जैसे गठिया, अपनी ही शरीर की कोशिकाओं पर प्रहार करने वाली बिमारी लूपस, कान व आंख की समस्याएं जैसै कान की सूजन, आरटिस, माईट, जीवाणु, विषाणु, कैंडिड फफूंद, की समस्या, कान में पौधों के बीजों का घुस जाना आदि अनेक समस्याएं हैं, जिनका निवारण आप मेरे इस्तेमाल से बखूबी कर सकते हैं।

पहले मैं चर्म रोगों की बात करुँ तो पशुचारे के साथ पशु को मेरा जैल खिला दें। बराबर सेवन करने से सूजन कम होगी। मृत कोशिकाएं और सूजन की वजह से निकलने वाला डिस्चार्ज यानी गंदा तरल भी बाहर निकल जाएगा। इससे एक उपयुक्त माहौल पनपेगा, कोशिकाएं पुनः पनपेंगी और इस तरह से घाव भर भी जाएगा। दरअसल चमड़ी के जल जाने पर मेरा इस्तेमाल करने से घाव बहुत जल्दी भर जाता है। तभी तो मुझे अंग्रेजी में "बर्न प्लांट" यानी जले को ठीक करने वाला पौधा कहा जाता है।

घावों और जले पर तो मेरा असर खासतौर पर अच्छा दिखता है। घाव भरने और उसे ठीक करने हेतु उसे साफ पानी से अच्छी तरह से साफ कर लें। तदुपरान्त घाव के स्थान पर मेरे गूदे के साथ पट्टी बराबर करते रहें। ध्यान इस बात का रखें कि पट्टी बड़ी सावधानी से हटाई जाए ताकि घाव के स्थान पर कोई और पट्टी हटाने से और घाव न बन जाए।

अब यदि मैं मुंह और पाचन प्रणाली के रोगों की बात करुं तो इस संबंध में मेरे गूदे का छिड़काव और जैल का इस्तेमाल आप पशुओं पर बखूबी करें। पशु भोजन के साथ गूदा मिलाने से पाचन समस्याओं और उल्टी व दस्त में आराम मिलता है। पेशाब प्रणाली की समस्या में भी मेरे जैल के इस्तेमाल से खूब आराम मिलता है।

सुरक्षा तंत्र शरीर का एक अति अहम हिस्सा है। मेरे गूदे का नियमित सेवन एक लंबे अरसे तक करते रहने से लंबे अरसे से चल रही सुरक्षा तंत्र संबंधी समस्याएं दूर की जा सकती हैं। मेरे जैल से या फिर छिड़काव के सेवन से आंख व कान की सूजन व अतिक्रमण की समस्या से निजात मिल जाता है।

बता दूं कि वैसे तो मैं अफ्रीका के गर्म इलाकों का मूल निवासी हूँ लेकिन सेहत को चुस्त–दुरुस्त रखने, बिमारियों से दो चार होने, चर्म की चमक दमक बरकरार रखने व ऊपर्युक्त अन्य सेहत के लाभों के लिए जिस किसी ने मुझे जांचा–परखा और इस्तेमाल किया, वह मेरा दिवाना हो गया और अपने साथ मेरा पौधा साथ लेकर चलता बना। इस तरह मैं दुनिया के कोने–कोने तक पहुंचा। मुझे भी जहां–जहां उचित वातावरण मे रखा गया व मेरी देखभाल की गई मैं वहीं का होकर रह गया। आज मैं दुनिया के दिलों पर राज कर रहा हूँ और मानव की बराबर सेवा कर रहा हूँ।

अब मैं अपने नाम के बारे में बात करता हूँ। वैसे तो मेरे सौ से ज्यादा नाम है लेकिन वैज्ञानिकों ने मुझे नाम दिया है "अलो वेरा"। जी हां, यह एक ऐसा नाम है जो कि दुनिया भर में प्रचलित है। इसमें "अलो" असल में अरबी भाषा के "अलोह" से लिया गया है। जिसका मतलब है कड़वा (क्योंकि मेरा गूदा थोड़ा कड़वा होता है) और चमकदार। "वेरा" लातीनी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है "टरु" यानि की सच्चा। यानी पूरे नाम का मतलब है – कड़वा, चमकदार और सच्चा।

अब मैं अपने शरीर की बात करता हूं। वैसे तो मैं जादुई गुणों की खान हूँ, लेकिन आकर्षक कतई नहीं। मेरा शरीर अजीब गुच्छानुमा सा दिखता है। गुच्छे का यह आकार मुझे गूदे से भरी पत्तियां देती हैं। देखने में कांटेदार कैक्टस जैसा लगता हूं लेकिन पत्तों पर काटों की उपस्थिति के चलते कैक्टस परिवार से नहीं बल्कि प्याज और लहुसन का भाई हूँ और "लिली" परिवार से नाता रखता हूँ। भले ही देखने मे मैं बेकार लगता हूँ लेकिन जाड़े/बसंत ऋतु में मुझ पर गुलाबी रंग के फूलों के आकर्षक डंठल पनपते हैं। तब परिंदे, भंवरे, तितली व अन्य रस पीने वाले कीट मेरी तरफ खींचे चले आते हैं। परपल सनबर्ड यानी शकरखोरा नामक पक्षी मेरे फूलों के डंठल पर पंख बराबर फड़फड़ाता हुआ मेरे मीठे रस का खूब आनन्द लेता है।

बात थोड़ा आगे और बढ़ाऊं तो बताऊं कि मेरा आकार करीब तीन इंच से चार फुट तक हो जाता है। दुनिया भर में करीब 250 के करीब मेरी जातियाँ है। क्योंकि अब आप मेरे करिश्माई गुणों से रु–ब–रु हो गए हैं तो क्यों न आप मुझे घर के गमले में लगाएं या फिर खेती करें। तो मैं अपने उगाने के गुर बता देता हूँ।

पहली बात तो यह है कि कहीं भी यहाँ तक कि पत्थरीली मिट्टी में भी उग जाने में सक्षम हूँ। लेकिन जल भराव वाली जमीन और छाया से मुझे सख्त नफरत है। रुखी–सूखी आवोहवा मुझे खूब रास आती है। अतः मुझे ऐसे ही वातावरण में पाले पोसें। अब पौधें कैसे प्राप्त करें, इसकी बात करें तो गर्म और नमीदार माहौल जो कि हमारे यहां जून जुलाई में होता है, उस समय मेरे गुच्छे में छोटे–छोटे पौधे निकल आते हैं। जिन्हें "सकरज" कहा जाता हैं, पनपते हैं। इस पौधों को मदर प्लांट से आसानी से अलग किया जा सकता है। इन पौधों को आप गमले में या फिर क्यारी में भी लगा सकते हैं। यदि आप व्यवसायिक खेती करना चाहते हैं तो पहले पौधशाला तैयार करनी होगी। तदुपरान्त अगले वर्षा जून से सितंबर तक खेत में 1 मीटर 1 मीटर की दूरी पर मेरा रोपन करें। मैं आपको यह भी बताना चाहता हूँ कि मेरे कोई नखरे नहीं। मैं कोई देखभाल भी नहीं चाहता। हां, रोपण के शुरुआत में थोड़ा ध्यान दें। शुरु में करीब सप्ताह पानी दें। बस माटी में हल्की सी नमी बरकरार रहे, वही मेरे लिए बहुत है। लेकिन बाद में सच पूछो तो पानी की मुझे न के बराबर जरुरत पड़ती है। अतः मेरी क्यारी, खेत या फिर गमले को पानी से लबालब रखने का कोई लाभ नहीं। इससे मुझ पर उल्टा असर होता है। गर्मियों में भी माह में एक बार पानी दें, तो बहुत है। बस मेरे पत्ते सिकुड़ने लगें उस वक्त पानी दें। मैं उसी में खुश रहूँगा। ज्यादा पानी देने से पत्ते भारी तो बन जाते हैं, लेकिन जादुई गुण बुरी तरह से प्रभावित होतें हैं। पाले और बर्फ से मुझे परहेज है।

अतः सर्दियों में मुझे पाले से बचाएं और बर्फीले पहाड़ों में बिल्कुल न लगाएं क्योंकि ऐसे में मेरे पत्ते सड़ जाते हैं। रस्ट, तने का सड़न रोग, काले धब्बे, सूटी मोल्ड व जीवाणु नर्म सड़न रोग मुझ पर लग जाते हैं। इनसे बचने हेतु ज्यादा पानी न दें। मेरे रोगी होने पर 0.01 प्रतिशत डाईथेन एम–45

नामक फफूंदनाशक का पन्द्रह दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

अब सवाल पैदा होता है कि मेरा सेवन करें कैसे? बता दूं कि मेरे सेवन में थोड़ी सावधानी जरुर बरतें। आप मेरी पत्ती के गूदे को तुरन्त नहीं खा सकते या फिर पशु को नहीं खिला सकते। यदि ऐसा करोगे तो लीवर (यकृत) पर असर पड़ सकता है। दरअसल जब मेरी पत्ती काटी जाती है तो उसमें से हरे पीले रंगा का तरल निकलता है। यह तरल शरीर के लिए हानिकारक है। इसके लिए पत्ते को काटकर करीब रात भर खड़ी दिशा में रखें। इससे यह तरल पदार्थ जिसे "अलोइन" कहा जाता है, निकल जाएगा। फिर पत्ते की हरी छाल निकालकर माचिस की डिबिया के बराबर सफेद गूदा आप बेझिझक खा सकते हैं।

मैं अपनी खूबियों के बारे में एक बात और बताना चाहता हूँ। मैं औषधि जगत का महाराजा और संजीवनी ही नही, बल्कि मुझ में पोषक तत्वों की भी भरमार है। मुझ में खनिज तत्वों में कैल्शियम, तांबा, लोहा, मैंगनीज, पोटाशियम व जस्ता, विटामिन में ए,बी, सी,ई, कोलीन व फोलिक एसिड अमीनों एसिड में एलानीन, आरजीनिन, लाईसीन, ल्यूसीन व वैलीन समेत 20 अम्ल एंथराकीनोनज में अलोविन एंथ्रासीन, अलोटिक एसिड व इमोडिनय एंजाईमज में एंथरानोल, सिनामोमिक एसिड, समोडिड आदि कार्बोहाईड्रेस में मोनोसैक्राईडज, पौलीसैक्राईडज व पौलीमैनोज सैपोनिनज में गलाईकोसाईडज हारमोंज में आगजिनस व जिब्रेलिंज पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मुझ में सैलिसिलिक अम्ल, स्टीरायडज (लूपियोल, सिस्टो स्टीरोल, कैंपस्टीरोल) व क्रोमोनज भी पाये जाते हैं। वैसे तो बाजार में मेरी क्रीम जैल व जूस मिल जाता है, लेकिन यदि आप हर रोज ताजा भाग इस्तेमाल करें तो बेहतर रहेगा।

तो हूँ न मैं गुणों का खजाना? तो आप भी मेरी एक टुकड़ी रोजना खाना व अपने पशुओं को भी खिलाना, रोगों को दूर भगाना और स्वस्थ रहना। मैं दीघायु जीता हूँ। यदि आप मुझे बबार्द नहीं करोगे तो मैं सौ वर्ष तक आपकी व आपके परिवार व पशुधन की सेवा करता रहूँगा।

अच्छा जी! मैं अपनी आत्मकथा बंद करता हूँ।

जगदीश चन्द्र
भारतीय वन सेवा

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-04 जुलाई-दिसंबर,2020

अश्वगंधा (*विथानिया सोमनिफेरा*) : एक बहुउपयोगी औषधीय पौधे की व्यावसायिक खेती

अजय गुलाटी, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी एवं रामबीर सिंह, वैज्ञानिक–डी,
विस्तार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

सदियों से औषधीयों का उपयोग अनेक असाध्य रोगों के निवारण में किया जाता रहा है। वर्तमान कोरोना संक्रमण काल में विश्व में आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति द्वारा रोग उपचार के प्रति मानव का विशेष ध्यान आर्कषित किया है। यह पद्धति असरदार, सस्ती और मानव जीवन पर बिना विपरीत प्रभाव के है। इस पद्धति का उल्लेख धार्मिक एवं ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है। इस पद्धति में औषधीयों को बनाने में उन औषधीय पौधों का उपयोग होता है जो वनों से आती है। अधिक उपयोग के कारण प्राकृतिक रूप में औषधीय पौधें वनों से लुप्त हो रहे है और कुछ लुप्त होने की स्थिति में है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अध्ययन के अनुसार लगभग 80 प्रतिशत लोग मुख्य रूप से पारंपरिक चिकित्सा पद्धति पर निर्भर है जिसमें औषधीय पौधों का उपयोग किया जाता है। इसलिए औषधीय पौधों की मांग बढ़ती जा रही है। इन औषधीय पौधों से अनेक औषधीय निर्माण, खाद्य पदार्थ एवं सौन्दर्य प्रसाधन उत्पाद बनाये जाते है। इस कारण वर्तमान एवं भविष्य की मांग एवं लाभप्रदता को देखते हुए किसानों ने पारंपरिक फसलो से हटकर औषधीय पौधों की खेती को अपनाया है।

औषधीय पौधों के महत्व एवं कोरोना संक्रमण को देखते हुए राजधानी दिल्ली में आयुष मंत्रालय, भारत सरकार, भारतीय आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् एवं वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसंधान परिषद् द्वारा औषधीय पौधों के प्रभाव का आंकलन करने एवं वैज्ञानिक प्रमाण प्राप्त करने हेतु महत्वपूर्ण पौधों का चयन किया गया है। इन चयनित औषधीयों में अश्वगंधा भी एक प्रमुख औषधि है। यह औषधि अमृत तुल्य एवं शक्तिवर्धक है और अनेक बीमारियों के निदान में प्रभावपूर्ण असर करती है, इसके साथ ही किसान भी अपने खेतों में अश्वगंधा की खेती को अपना कर आर्थिक रूप से सम्पन्न हो सकते है साथ ही समाज को स्वस्थ रखने में योगदान दे सकते है।

परिचयः अश्वगंधा उपोष्णकटिबंधीय और शुष्क क्षेत्रों में पाये जाने वाला महत्वपूर्ण औषधीय पौधा है। यह पौधा ***सोलेनेसी*** कुल का है जिसका वैज्ञानिक नाम *विथानिया सोमनिफेरा* है। विश्व में यह पौधा भारत के अलावा मिस्र, स्पेन, श्रीलंका, पाकिस्तान, पूर्वी अफ्रीका में पाया जाता है। भारत में यह पौधा मध्य प्रदेश, राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, कर्नाटक, पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं हिमालय में 1500 मी. की ऊँचाई तक मिलता है। यह एक सीधा बढ़ने वाला शाखाओं से युक्त पौधा है जिसकी लम्बाई 1.0 मी. से 1.5 मी. तक होती है। इसकी पत्तियाँ अण्डाकार हरे रंग की 8 से 10 से. मी. लम्बी होती है। इसका पका हुआ फल नांरगी और लाल रंग का होता है। इसकी ताजा पत्तियों तथा जड़ों में घोड़े के मूत्र की गंध आने के कारण ही इसका नाम अश्वगंधा पड़ा है। अश्वगंधा में अनेक रासायनिक घटक सोमिनिफेरीनीन, ट्रोपैनॉलस, विथेफेरीन–ए, वेथेनीन, वेथेनॉलाइडस, सिस्टरॉल, ऐनीफेरीन, बीटा–सिस्टेरॉल पाये जाते है।

चित्र–1: अश्वगंधा का पौधा

चित्र–2: अश्वगंधा का फूल

चित्र–3: अश्वगंधा का फल

औषधीय उपयोग : इस औषधीय के प्रत्येक भाग जड़, पत्ते, फल एवं बीज का उपयोग होता है परन्तु सबसे अधिक जड़ों की मांग है। इसकी जड़ों के चूर्ण के नियमित सेवन से शरीर में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। इसके सेवन से सामान्य व्यक्ति के शरीर में शक्ति, स्फूर्ति तथा कांति आ जाती है तथा यह शरीर का दुबलापन समाप्त कर मासपेंशियों एवं नसों को हष्ट–पुष्ट बनाता है। इसके उपयोग से वृद्धावस्था के रोगों का व्यक्ति पर प्रभाव नही पड़ता। टॉनिक के रूप में प्रत्येक पुरूष, स्त्री एवं बच्चे उचित मात्रा में इसका सेवन करके अपने शरीर को स्वस्थ रख सकते है। इसके नियमित सेवन से हिमोग्लोबिन के मात्रा में वृद्धि होती है। यह मानसिक अवसाद, तनाव एवं चिंता को कम करने में लाभप्रद है। खांसी, श्वास, खुजली, धातु, गठिया, मूत्र तथा पेट के रोगों के उपचार में उपयोगी है। यह कोलेस्ट्रोल की मात्रा को घटाकर हृदय को स्वस्थ रखने में सहायक है। इसके प्रयोग से खून में शर्करा का स्तर नियंत्रित रहता है। यह कोलोजोन को बढ़ाकर घाव को जल्दी ठीक करता है। इसका उपयोग करने से पुरूष और स्त्री दोनों में स्वस्थ प्रजनन क्षमता का विकास होता है। इस औषधि का उपयोग करने से कैंसर पीड़ित रोगी में लड़ने की क्षमता मे वृद्धि पायी

गयी है। इस औषधि के उपयोग से स्त्री के श्वेत प्रदर, कमर दर्द एवं शारीरिक कमजोरी आदि समस्याएं दूर होती है।

जलवायु एवं मृदा: इसकी अच्छी खेती के लिए शुष्क क्षेत्र उपयुक्त होते है जहां 60 सेमी. से 80 सेमी. सालाना वर्षा तथा 20° से 40° तापमान होता है। इसकी खेती पीएच मान 6.5 से 8.0 के साथ लाल, रेतली, काली और बलुई मिट्टी में की जा सकती है। जड़दार फसल होने के कारण इसकी खेती उन मिट्टियों में अच्छी होती है जो नर्म तथा भुरभुरी हो ताकि इनमें फसल की जड़ें ज्यादा गहराई तक जा सके। साथ ही इसकी खेती में अच्छी जल निकासी की आवश्कता होती है।

कृषि तकनीक:

खेती की तैयारी, नर्सरी एवं पौधा उगाना: अश्वगंधा की खेती के लिए खेत को वर्षा से पहले 2–3 बार डिस्क हैरो या देशी हल द्वारा जुताई कर अच्छी तरह पाटा चला कर समतल करके तैयार कर लेना चाहिए। अच्छी उपज के लिए गोबर की सड़ी सूखी खाद 50 कु. प्रति हैक्टयर का उपयोग करना चाहिए। इसकी अच्छी फसल के लिए अच्छी किस्म एवं गुणवत्ता वाले प्रजाति जवाहर असगंध–20 बीज का प्रयोग करना चाहिए। नर्सरी में तैयार कर खेत में रोपित पौधों हेतु 5 किलो ग्राम प्रति हैक्टयर और खेत में सीधे छिड़काव कर 12 किलो ग्राम प्रति हैक्टयर बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई से पूर्व 3 ग्राम प्रति किलो ग्राम की दर से बीजों का उपचार कीटनाशक दवाई से करना चाहिए इसके उपरान्त रेज्ड नर्सरी बेडस में मॉनसून से पूर्व बीज को लगा देना चाहिए और रेत द्वारा हल्के से दबा देना चाहिए। 10 दिनों में इन बीजो का अंकुरण हो जाता है तथा 6 सप्ताह पश्चात् 6 से 7 सेमी. पौधों को खेत में रोपित किया जा सकता है। इसके पौधों को वर्षा ऋतु के अन्तिम दिनों में लगना चाहिए क्योंकि अधिक वर्षा में यह पौधें खराब हो जाते है।

चित्र–4: अश्वगंधा की नर्सरी

खेत में रोपाई: खेत को अच्छी तरह भुरभुरा एवं गहरा जोत कर तैयार और पुरानी सड़ी गोबर की खाद को मिट्टी में मिलाकर नर्सरी से स्वस्थ पौधें का रोपण वर्षा ऋतु समाप्त होने पूर्व कर लेना चाहिए क्योंकि अश्वगंधा के पौधें अधिक वर्षा व ज्यादा पानी की जमाव को सहन नहीं कर पाते है। पौधों को पंक्ति से पंक्ति की दूरी 60 सेमी. तथा पौधें से पौधें की दूरी 30 सेमी. में करनी चाहिए। पौधा रोपण के दौरान पौधें को हल्की सिंचाई की आवश्यकता होती है। शुरूआत में 8 से 10 दिनों के अन्तराल के पश्चात् पौधा अच्छी तरह से जड़ पकड़ ले तब तक सिंचाई करनी चाहिए। साल में इसको 1 से 2 सिंचाई की आवश्यकता होती है। इसकी फसल में खरपतवार नियंत्रण हेतु निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। पहली निराई–गुड़ाई 25 से 30 दिन में तथा दूसरी उसके 25 से 30 दिन के बाद करने से पौधें अच्छी तरह बढ़ते है। पौधों में माहू कीट, पर्णझुलसा, गलन आदि रोगों की समस्या होती है। इन पौधों पर कीट के प्रभाव एवं बीमारियों को खत्म करने के लिए नीम की खली व जैविक कीटनाशक का छिड़काव उपयुक्त मात्रा में करना चाहिए। रोगग्रस्त पौधों को यांत्रिक विधि से हटाना बेहतर होता है। अश्वगंधा को पॉपलर, सफेदा (यूकेलिप्टस), मीलिया, आँवला, सागौन व अन्य वृक्ष प्रजातियों के साथ अन्तरवर्तीय फसल के रूप में लगाया जा सकता है।

चित्र–5: अश्वगंधा की खेती

फसल कटाई: पौधा रोपण होने के 5 से 6 महीने के पश्चात् इसकी फसल तैयार हो जाती है। इसकी पत्तियाँ पीली पड़ने लगे तथा इस पर आए फल पकने लगे तो अश्वगंधा के पौधों को जड़ सहित उखाड़ लेना चाहिए। उखाड़ने से पूर्व खेत में हल्की सिंचाई करनी चाहिए जिससे कि पौधों को उखाड़ने में आसानी रहती है तथा उखाड़ने के तुरन्त बाद पौधों को तने से जड़ों को अलग कर देना चाहिए तथा जड़ों की मिट्टी को पानी से साफ कर देना चाहिए। कटने के पश्चात् जड़ों को 8 से 10 सेमी0 टुकड़े कर 8 से 10 दिनों तक छाया में सुखाना चाहिए। अच्छा मूल्य प्राप्त करने के लिए जड़ों की ग्रेडिंग लम्बाई, मोटाई, एकरूपता, शुद्धता और अन्दर की सफेदी के आधार पर की जाती है। फलों को सुखाकर और मंडाई कर बीज प्राप्त किया जाता है।

अश्वगंधा का उत्पादन एवं आय: अश्वगंधा का एक

हैक्टेयर में सूखी जड़ों का उत्पादन 6.00 कुन्तल तथा बीज का उत्पादन 50 किलो ग्राम होता है। बाजार में एक कुन्तल जड़ की कीमत रु. 15000.00 तथा प्रति किलो ग्राम बीज की कीमत एक 150.00 रू. है। अर्थात अश्वगंधा की एक हैक्टेयर की कुल फसल से रु. 97500.00 प्राप्त होते हैं। इसमें प्रति हैक्टेयर लागत रु. 55,000.00 आती है एंव शुद्ध लाभ रु. 42,500.00 प्राप्त होता है।

चित्र–6: अश्वगंधा की जड़

चित्र–7: अश्वगंधा के बीज

अश्वगंधा के आय व्यय का विवरण (प्रति हैक्टयर)

भूमि की तैयारी	–	रू. 7500/–
गोबर की खाद	–	रू. 7500/–
पौधशाला में पौध बनाने का खर्चा बीज सहित	–	रू. 5000/–
पौध को खेत में रोपित करने का खर्चा	–	रू. 10000/–
निराई–गुड़ाई	–	रू. 5000/–
पौधों की सिंचाई	–	रू. 5000/–
कीटनाशक	–	रू. 2500/–
फसल का काटने एवं सुखाने का खर्चा	–	रू. 10000/–
विविध खर्चा	–	रू. 2500/–
कुल लागत	–	**रू. 55000/–**

उत्पादन

अश्वगंधा की सूखी जड़	–	6 कुन्तल
अश्वगंधा की बीज	–	50 कि.ग्रा.
अश्वगंधा सूखी जड़ मूल्य(प्रति कुन्तल)	–	रू. 15000/–
अश्वगंधा की बीज– मूल्य(प्रति कि.ग्रा.)	–	रू. 150/–
अश्वगंधा की जड़– कुल मूल्य (6 कु. रु. 15000)	–	रू. 90000/–
अश्वगंधा की बीज कुल मूल्य (50कि.ग्रा. रु. 150)	–	रू. 7500/–
कुल लाभ	–	**रू. 97500/–**
शुद्ध लाभ (रू. 97500–रू. 55000)	–	**रू. 42500/–**

अजय गुलाटी
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-04 जुलाई–दिसंबर,2020

एलेक्ट्राचित्रा कुटैन्सिस : औषधीय महत्व की एक लुप्तप्राय परजीवी प्रजाति

सत्यव्रत सिंह, परियोजना सहायक एवं आलोक यादव, वैज्ञानिक–ई
पारि–पुर्नस्थापन वन अनुसंधान केन्द्र, प्रयागराज

परिचय–

एलेक्ट्राचित्रा कुटैन्सिस (*Alectrachitra kutensis*) (कुल) एक स्थानिक और गंभीर लुप्त प्राय परजीवी पौधा है, यह वाइटेक्सनिर्गुडो (शिंदवार) के पौधे के साथ उगने वाला पूर्णतः मूल (जड़) परजीवी है। अति प्राचीनकाल से ही भारतीय सभी प्रकार की चिकित्सा में इसका उपयोग करते आ रहें हैं, जो कि प्राचीनतम वेदों में वर्णित है। यह सर्वप्रथम उत्तरप्रदेश की चित्रकूट जिले में देखा गया। जो मध्य प्रदेश तथा उत्तरप्रदेश की मिलीजुली जलवायु का दक्षिणी छोर है और जैवविविधता की दृष्टि से प्रकृति की बहुमूल्य निधि है। चित्रकूट के क्षेत्र में इसे निर्गुंड़ी के नाम से जाना जाता है।

अकार्यकी तथा माप :–

एलेक्ट्राचित्रा कुटैन्सिस वाइटेक्स निर्गुडो की धागे नुमा जड़ों में स्थापित हो कर अपना जीवन चक्र पूरा करता है इसके तने की लम्बाई 20 से 40 सेमी होती है। यह अपनी वृद्धि काल में नारंगी, हल्का पीला व गाढ़े कथई रंग का दिखाई देता है। सूखने के उपरांत इस का रंग स्वतः काला हो जाता है इसके पुष्प पीले तथा धारीदार और देखने में सुन्दर लगते हैं। इसके पुष्प मुख्य तने से लगे हुये होते हैं। इनमें पंच कोशीय (5 लोब्ड), 5 दल पुंजरोमिल पुष्प पंखुड़ियों से 3 बैगनी धारी देखने को मिलती है अण्डाशय संयुक्त आण्डपी मुख्य तने में द्विध्रुवीय स्थिति में तथा कैप्सूल ग्लूबोज व बीज अतिसूक्ष्म स्थिति में पाया जाता है।

चित्र: 1 – 4 *एलेक्ट्राचित्रा कुटैन्सिस* **का जीवन चक्र**

यह ओरोबेन्कसी (*Orobanchaceae*) कुल का सदस्य है जिसमें की ओरोबेंकीमाइनर प्रायः इसके आस–पास के क्षेत्रों में बहुतायत देखा जाता है।

कुल (फेमिली) संक्षिप्त विवरण–

इसको सामान्यता शुई फोड़ (Broom rape) कहा जाता है। यह अश्वगंधा का फल पर्ण रहित तथा सफेद रंग का परजीवी पौधा है जो की मेजबान पौधों की जड़ों से जुड़ा रहता है। यह पर्ण हरित के बिना एक शाकीय वार्षिक परजीवी है इसका तना भूमिगत विकास के बाद बाहर निकलने में काफी समय लेता है। इसकी पत्तियां हल्के बैगनी पंखुड़ियों के रूप में परिवर्तित हो जाती है इसके फूल बसंत और गर्मियों में स्तमंभित मुख्य शाखा में लगतें हैं सफेद, नीले तथा बैगनी रंगों का मिला जुला मिश्रण होता है। तने और फूलों के मुख्य सिरे छोटे–छोटे स्तंभमित से ढके होते हैं। फल (कैप्सूल) चार कच्छों के साथ एक कच्छ कई बीजों सूक्ष्म 0.3 मिलीमीटर लम्बे अण्डे के आकार का शुष्क तथा रंग में पीला अथवा भूरा दिखाई देता है।

चित्र–5:

कृषि योग्य फसलें तथा उन पर होने वाले प्रभाव :–

यह कुछ फसलों जैसे सब्जियों दालों, तिलहनों तथा कुछ मुख्य कुल जैसे–*कुकुरविटेसी* (*Cucurbitaceae*) एवं *ब्रेसीकेशी* (*Brassicaceae*) कई प्रकार की फसलों को ये परजीवी प्रभावित कर सकता है। इसकी मुख्य मेजबान फसलें गोभी, फूलगोभी, आजवाइन, भांग, सूरजमुखी, अल्सी, सरसों, पालक, सेम, मसूर, सन, लौग, शिमला मिर्च, बैंगन, आलू, टमाटर और प्याज शामिल हैं। जिनमें सरसों मुख्य फसल है। यह गोभी और अजवाईन की उपज को कम प्रभावित करतें हैं जब कि अन्य फसलों की पैदावार इससे 50 प्रतिशत कम हो जाती है। यह बिना किसी आश्रय के भी जीवित रहते हैं। इसे खरपतवार की श्रेणी में रखा गया है तथा इससे निजात पाने के लिये भूस्वामियों तथा कृषकों से मिल कर इसके निवारण हेतु प्रभावी कदम उठाये जा रहे हैं।

एलेक्ट्राचित्रा कुटेन्सिस को अभी तक सिर्फ एक नमूने के रूप में लिया गया था, लेकिन वर्तमान समय में इसका उपयोग विभिन्न प्रकार की औषधियों जोकि चूर्ण, वटी तथा अवलेह के रूप में विभिन्न रोगों में प्रयोग किया जाता है यह पहली बार एम. ए. राउ द्वारा 1961 में वर्णित किया गया था। तत्पश्चात आर. प्रसाद के द्वारा इसका सफल प्रयोग कुष्ठ रोगों में देखा गया।

वृद्धि का समय – *एलेक्ट्राचित्रा कुटेन्सिस* एक वर्षीय पौधा है जोकि अप्रैल से लेकर आने वाले अप्रैल तक देखने को मिलत है। इसका पौधा अक्तूबर से लेकर फरवरी माह तक अपने वृद्धि के चरम पर होता है चित्रकूट की रेतीली मिट्टी जोकि नम हो, इसके लिये उपयुक्त मानी जाती है।

***एलेक्ट्राचित्रा कुटेन्सिस* के मुख्य वास स्थानः–**

इलेक्ट्रा मुख्यतः स्फटिक शिला शिर सावन की रेतीली मिट्टी जो कि चित्रकूट में स्थित है इसकी उपस्थिति काफी समतल जहाँ

बारिश पर्याप्त मात्रा में देखी जाती है और आसपास स्वच्छ जलीय नाले प्रायः पाये जाते हैं।

सर्दी के मौसम में यह काफी स्वस्थ दिखाई देतें हैं तथा इनमें पुष्प के लिये यह मौसम अत्यंत अनुकूल है। यह अपने वृद्धि काल के शुरूआती समय में सफेद होते है परंतु जल्द ही बैगनी रंग में परिवर्तित हो जाती है। यह उपज में प्रकंदी स्वभाव का है इसमें कई अच्छी कलियॉ प्रस्फुटित होती हैं। खुदाई के दौरान इसके ताजा प्रकन्द पीले रंग के होते हैं सूखने के उपरांत यह स्वतः काले हो जाते हैं। इसको स्थानीय भाषा में नेगड़ की बंटी के नाम से जाना जाता है।

राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में भी शोधकर्ताओं द्वारा 1987 से 1991 के बीच इसे देखा गया जिसमें कोटा, बूंदी, बारां और झालावाड प्रमुख हैं। लेकिन कुछ असुविधाओं के कारण तब इनकी पुष्टि नहीं की जा सकी। 2010 में चित्रकूट के दीनदयाल शोध संस्थान (आरोग्य धाम) के कुछ वैज्ञानिकों द्वारा इसे पाये जाने का दावा किया गया।

जीवनचक्र–

ओरोबैंकी के बीज स्ट्रीग्मोलेक्टान उत्तेजक की उपस्थिति में मेजबान पौधे की जड़ों से संलग्नित हो जाता है। सीडलिंग हास्टोरिया के साथ जड़ में संलग्न हो जाता है। अंकुरण से पहले बीज कई हप्तों तक भूमिगत रहता है।

यह बड़ी संख्या में बीजों का उत्पादन करता है जोकि मिट्टी में कई वर्षों तक रह सकतें हैं। यह छोटे बीज कपड़ों, श्रमिकों के जूतों तथा मशीनों के द्वारा अन्य स्थानों पर विस्तारित हो जातें हैं। भेड़ बकरियों के आंत्र पथ से बीज न पच पाने के कारण यथावत उनके मल द्वारा अन्य स्थानों में विस्तारित हो जाते हैं।

***एलेक्ट्राचित्रा कुटेन्सिस* के औषधीय महत्व :–**

इसकी राख अम्ल में अघुलनशील तथा जल में घुलनशील होती है। यह विभिन्न प्रकार की बिमारियों जैसे की कुष्ठ रोग, तपेदिक, पच्छाघात, बवाशीर के उपचार में प्रयोग किया जाने वाला औषधिय पौधा है। इसका उपयोग अंत्र परिजीवियों, कब्ज, ल्यूकोरिया, बुखार, शुक्राणु सोथ और रक्त शोधक के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

निष्कर्ष–

ओरोबिर्केसी कुल (*Orobanchaceae*) में यह परजीवी प्रजाति लुप्तप्राय होने के साथ–साथ औषधीय महत्व से परिपूर्ण है। इसके बचाव हेतु कृषकों को वाइटेक्स निर्गुणों की खेती के लिए प्रेरित करना चाहिए।

सत्यव्रत सिंह
परियोजना सहायक

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-04 जुलाई–दिसंबर,2020

उत्तरी भारत में यकेलिप्टस के झुलसा रोग से संबंधित कैलोनेक्ट्रिया फंजाई की प्रजातियाँ

रत्नाबोली बोस[1], पीएचडी शोधार्थी, डॉ. शैलेष पाण्डेय[1], वैज्ञानिक–डी, पूजा जोशी[1], कनिष्ठ अनुसंधान अध्येता, सब्यसाची बनर्जी[1], पीएचडी शोधार्थी, डॉ. अमित पाण्डेय[1], वैज्ञानिक–जी, अदिति सैनी[1], पीएचडी शोधार्थी, डॉ. मनीष सिंह भण्डारी[2], वैज्ञानिक–डी

[1] वन व्याधि शाखा, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून
[2]आनुवंशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

यूकेलिप्टस की विभिन्न प्रजातियाँ एवं उनके संकर उत्तरी भारत में कृषि भूमि क्षेत्रों और वाणिज्यिक बागानों में बड़े पैमाने पर लगाए जाते हैं। ये वृक्ष इस क्षेत्र में कई काष्ठ आधारित और लुगदी कागज आधारित व्यापार के अवसरों का आधार हैं। *कैलोनेक्ट्रिया* फंजाई के द्वारा होने वाला झुलसा रोग उत्तरी भारत में यूकेलिप्टस को प्रभावित करने वाली एक विनाशकारी बीमारी है जो राज्य वन विभागों के वृक्षारोपण कार्यक्रमों को गंभीर रूप से प्रभावित करती है और किसानों को भारी नुकसान पहुंचाती है। यूकेलिप्टस को प्रभावित करने वाले *कैलोनेक्ट्रिया* की विभिन्न प्रजातियों के वर्गीकरण के महत्वपूर्ण प्रयास कई देशों में किए गए हैं। इसी तरह उत्तरी भारत में सफल यूकेलिप्टस वृक्षारोपण प्रबंधन विकसित करने के लिए *कैलोनेक्ट्रिया* प्रजातियों की सटीक पहचान की आवश्यकता है। इसे देखते हुएए वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य रूपात्मक विशेषताओं एवं डीएनए सिक्वेन्सिंग तकनीक के आधार पर *कैलोनेक्ट्रिया* की प्रजातियों की पहचान करना था। उत्तरी भारत में वर्ष 2018 और 2019 में किए गए रोग सर्वेक्षणों के दौरान यूकेलिप्टस की विभिन्न प्रजातियों में झुलसा रोग के कारण भारी नुकसान पाया गया। सर्वे के दोरान किशोर और परिपक्व पत्तियों पर ग्रेश.ब्राउन धब्बे दर्ज किए गए। रोग के अग्रिम चरण में धब्बे अक्सर आकार में काफी बड़े पाये गए जिसके पारिणामस्वरूप धब्बों ने पत्तों को पूर्ण रूप से घेर लिया। अंततः पत्तियों का भारी मात्र में गिरने के कारण वृक्षो की मृत्यु पायी गयी। प्रयोगशाला में रोग ग्रसित पत्तियों के नमूनों से लगातार *कैलोनेक्ट्रिया* प्रजाति के फंगस मिले। आकृतिक विषेशताओं एवं डीएनए सिक्वेन्सिंग तकनीक के आधार पर कैलोनेक्ट्रिया रेटेउडी एवं *कैलोनेक्ट्रिया सरसिआना* प्रजातियों की पुष्टि की गयी। ग्लासहाउस में किए गए प्रयोग के दोरान, यूकेलिप्टस के पोधों की स्वस्थ पत्तियों में *कैलोनेक्ट्रिया सरसिआना* के कोनिडिया को स्प्रे करने के 10 दिन उपरांत ग्रेश.ब्राउन रंग के धब्बे पत्तियों पर दिखे। बाद के चरणों में रोग बढ़ने के परिणामस्वरूप पत्तियाँ झुलसा रोग से 20 दिन में ग्रसित हो गई। यूकेलिप्टस के वे पोधे, जिन पर केवल स्टेराइल पानी का छिड़काव किया गया था, में रोग का कोई भी लक्षण नहीं दिखा। रोगग्रसित पत्तियों से पुनः पृथक्करण के परिणामस्वरूप मिले फंजाई की पहचान *कैलोनेक्ट्रिया सरसिआना* के रूप में की गयी। इस प्रकार कोच पोस्टूलेट्स की पूर्ति ने यह स्थापित किया कि उत्तरी भारत में हाल के सर्वेक्षणों के दौरान पाये गए यूकेलिप्टस के झुलसा रोग का एक मुख्य कारक *कैलोनेक्ट्रिया सरसिआना* है। भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तरी मैदानों से *कैलोनेक्ट्रिया सरसिआना* का यह पहला रिकॉर्ड हैए जोकि इससे पूर्व चीन में यूकेलिप्टस कटिंग सड़न से संबन्धित बताया गया है। भारत में *सिलिन्ड्रोक्लेडियम* (अब *कैलोनेक्ट्रिया*) की विभिन्न प्रजातियाँ यूकेलिप्टस के झुलसा रोग से संबन्धित हैं। दक्षिण भारत में, *सिलिन्ड्रोक्लेडियम कुईंकिसेपटेटम* (अब *कैलोनेक्ट्रिया रेटेउडी*), *सिलिन्ड्रोक्लेडियम इलिसिकोला* (अब *कैलोनेक्ट्रिया लौरी*), *सिलिन्ड्रोक्लेडियम फ्लोरिडानम* (अब *कैलोनेक्ट्रिया क्योटेनसिस*), *सिलिन्ड्रोक्लेडियम थियाई* (अब *कैलोनेक्ट्रिया इनडसिआटा*), *सिलिन्ड्रोक्लेडियम क्लेवेटम* (अब *कैलोनेक्ट्रिया ब्रेसीकि,*) *सिलिन्ड्रोक्लेडियम स्कोपेरियम* (अब *कैलोनेक्ट्रिया सिलिनड्रोस्पोरा*), *सिलिन्ड्रोक्लेडियम कॉलहुनी* (अब *कैलोनेक्ट्रिया कॉलहुनी*)। वर्तमान अध्ययन उत्तरी भारत में *कैलोनेक्ट्रिया सरसिआना* के द्वारा होने वाले झुलसा रोग की प्रथम पुष्टि करता है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि भारत में यूकेलिप्टस को रोग ग्रसित करने वाली कैलोनेक्ट्रिया प्रजातियों की पहचान (सिवाय *सिलिन्ड्रोक्लेडियम कुईंकिसेपटेटम* के, जिसका वर्तमान नाम *कैलोनेक्ट्रिया रेटेउडी* है) में डीएनए सिक्वेन्सिंग तकनीक का इस्तेमाल नहीं हुआ है। इस अध्ययन में मानक

आकृतिक विषेशताओं और डीएनए सिक्वेन्सिंग तकनीक की संयुक्त जांच के तहत कैलोनेक्ट्रिया फंगस की दो प्रजातियों की पुष्टि की गयी। यह शोध कार्य भारत में कैलोनेक्ट्रिया फंजाई के वर्गीकरण के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। भारत में प्रभावी यूकेलिप्टस वृक्षारोपण प्रबंधन के लिए अन्य संभावित रोगजनक कैलोनेक्ट्रिया प्रजातियों की जनसंख्या संरचना को समझने के लिए व्यापक रोग सर्वेक्षण किए जाने की आवश्यकता है।

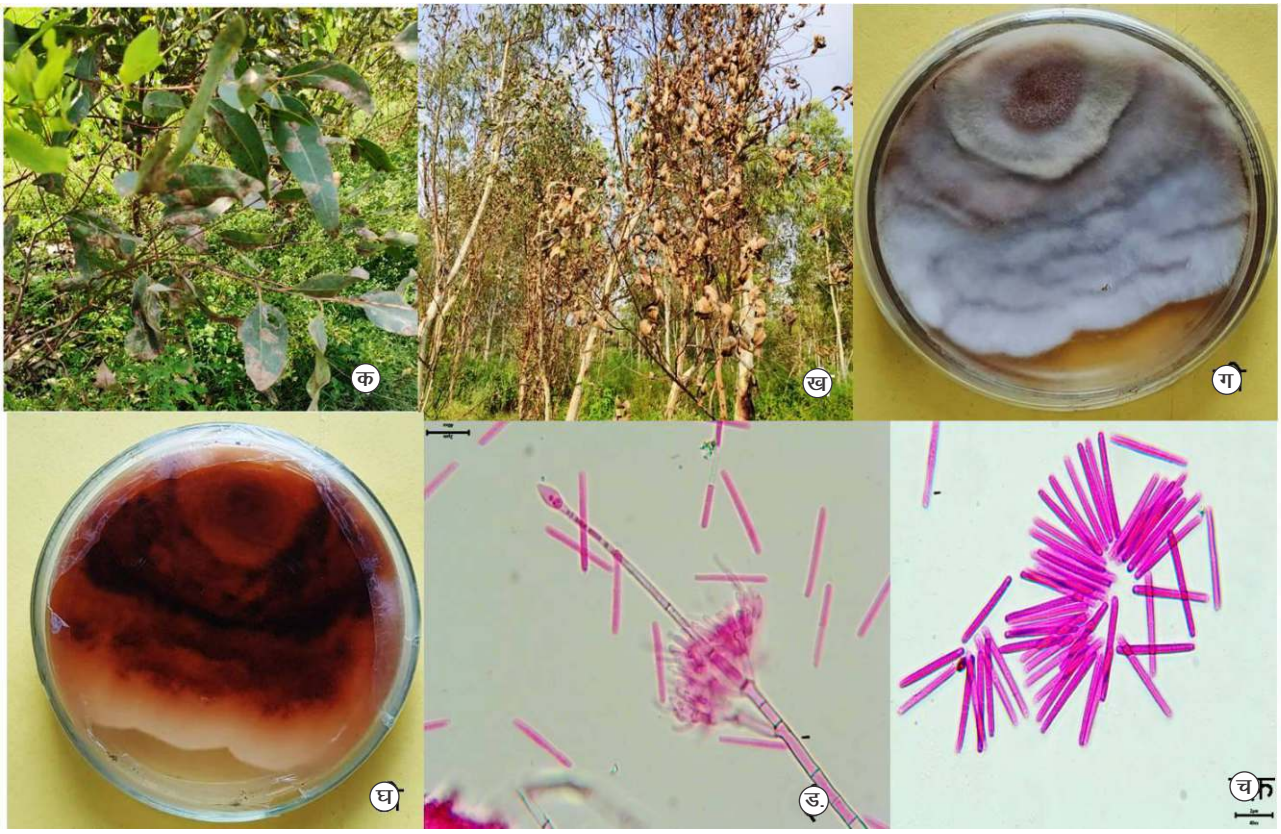

चित्र (क) झुलसा रोग के लक्षण (ख) झुलसा रोग ग्रसित यूकेलिप्टस के वृक्ष (ग एवं घ) *कैलोनेक्ट्रिया सरसिआना* का कल्चर प्लेट (ड़ एवं च) माइक्रोस्कोप द्वारा दर्ज की गयी *कैलोनेक्ट्रिया सरसिआना* का चित्र।

रत्नाबोली बोस
पीएचडी शोधार्थी

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-04 जुलाई–दिसंबर,2020

मेलिना आर्बोरिया रोक्सब: पूर्वोत्तर भारत का एक महत्वपूर्ण बहुउद्देश्यीय वृक्ष

तारा भूयाँ, परियोजना सहायक, डॉ. मनीष कुमार सिंह ,वैज्ञानिक–डी एवं डॉ. पापोरी बोरपुजारी, वैज्ञानिक–सी
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट, असम

1. परिचय

मेलिना आर्बोरिया रोक्सब. जिसे आमतौर पर गम्हारि या सफेद सागौन कड़ी या सिवान के रूप में जाना जाता है भारत की एक तेजी से बढ़ने वाली पेड़ की प्रजाति है। यह एक सबसे बेहतरीन बहुउद्देशीय वृक्ष है जो ईंधन, चारा, लकड़ी, औषधीय उत्पादों, अन्य घरेलू जरूरतों आदि की आवश्यकता को पूरा करने में सक्षम है। *मे. आर्बोरिया,* वर्बिनेसी परिवार से संबंधित है जो टेक्टोना ग्रैंडिस के समान एक प्रजाति है जिससे अच्छी गुणवत्ता की लकड़ी मिलती है। *मे. आर्बोरिया* कम खर्चीला तथा कृषिवानिकी और बड़े पैमाने पर पुनर्वनीकरण के लिए एक आदर्श विकल्प है (आईएसएफआर, 2013)। भारत में यह पूर्वी उप–हिमालयी इलाकों, इंडो–गंगा के मैदानों, अरावली पहाड़ियों, मध्य भारत, पश्चिमी प्रायद्वीप और पश्चिमी हिमालय में शुष्क पर्णपाती, नम पर्णपाती वनों और कभी–कभी सदाबहार वनों में अधिक मात्रा मे पाया जाता है। वर्तमान में *मे. आर्बोरिया* का देश के कृषिवानिकी प्रणाली के अंतर्गत आने वाले पेड़ों की कुल मात्रा का 0.47% योगदान है। यह प्रजाति 30 मीटर तक की ऊँचाई प्राप्त करती है और 80 सेमी से अधिक व्यास में बढ़ती है और व्यापक रूप से आर्द्र उष्णकटिबंधीय में कृषिवानिकी प्रणाली के एक अंश के रूप में उगाया जाता है। यह उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी में सबसे अच्छी तरह उगता है, जहां वर्षा 1200 से 4500 मिमी के बीच होती है, तापमान 20 से 45 डिग्री सेल्सियस तक और ऊँचाई समुद्र तल से 1000 मीटर तक होती है (तिवारी,1995) ।

हाल ही में इस पेड़ को भारत के कई हिस्सों में विशेष कर दक्षिणी भाग में किसानों द्वारा कृषि भूमि में लगाया जाना पसंद किया जा रहा है। इसी तरह पूर्वोत्तर भारत में यह वृक्ष बड़े पैमाने पर काष्ठ उद्योग और चारा उत्पादन के लिए उपयोग मे लाया जा रहा है। विश्व स्तर पर यह एशिया के उष्णकटिबंधीय और उपोष्णकटिबंधीय क्षेत्रों के 11 देशों में स्वाभाविक रूप से होता है। हैमिल्टन तथा अन्य, (1998) ने छोटे पैमाने पर *मे. आर्बोरिया* वृक्षारोपण की वित्तीय व्यवहार्यता की जांच की और यह पाया कि यह वृक्ष एक उत्कृष्ट लघु–धारक लकड़ी का अच्छा श्रोत है और इसी वजह से इसका प्रयोग, इंडोनेशिया सहित दक्षिण अफ्रीका में टी. ग्रैंडिस, स्वेतेनिया मैक्रॉफिला (महोगनी), परसेरियनथस फालकटारिया (इंडोनेशियाई अल्बिजिया) आदि के वैकल्पिक के रूप मे भी प्रयोग किया जाता है (ड्वोरक, 2004)।

2. *मे.आर्बोरिया* का महत्व

विभिन्न कृषिवानिकी प्रणाली के अंतर्गत आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण पेड़ प्रजातियों को उगाने से उत्पादकता में वृद्धि होती है और लकड़ी की मांग और आपूर्ति के बीच अंतर को कम करने में काफी मदद मिलता है। हल्की वजन वाली लकड़ी का उपयोग हल्के वस्तु के निर्माण, पैकेजिंग, फर्नीचर, कृत्रिम लिंब्स, पार्टिकल बोर्ड, प्लाईवुड, लकड़ी के हस्तशिल्प, माचिस आदि बनाने में किया जाता है। *मे. आर्बोरिया* की लकड़ी औसतन हल्की होती है, जिसका घनत्व 420 से 640 kg/m^3 के लगभग और इसका कैलोरी मान लगभग 4800 kcal होता है (गोंजालेज रुबियो, 2009)। इसकी लकड़ी का गुदा कोमल और बेहतर गुणो से समृद्ध होने के कारण, इसका प्रयोग कागज बनाने मे भी किया जाता है। इसकी पत्तियों को चारे के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है और इसके फूलों से प्रचुर मात्रा में नेक्टर पैदा होता है, जिसमें से अच्छी गुणवत्ता वाला शहद मिलता है। *मे. आर्बोरिया* वृक्षारोपण को उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधों में छोटे वुडलॉट्स, होम गार्डन और कृषिवानिकी प्रक्रिया में स्थापित और प्रोत्साहित किया गया है। औद्योगिक मांग हेतु लक्ष्य को पूरा करने के लिए एकमात्र वृक्षारोपण और फॉर्म–ग्रौन टिम्बर (यानी पॉपलर एवं यूकेलिपटस) के रूप में *मे. आर्बोरिया* की विशाल क्षमता को देखते हुए एग्रोफॉरेस्ट्री में वृक्षारोपण कार्यक्रम करने के लिए कृषकों, वन विभागों और गैर–सरकारी संगठनों और समुदाय आधारित संगठनों (सीबीओ) द्वारा बड़े पेमाने पर इसका इस्तमाल किया जाता है (वर्मा तथा अन्य 2017)। *मे. आर्बोरिया* का विकास दर अच्छी मिट्टी और वर्षा वाले क्षेत्रों में (40–50 m3h) मे अधिक बताई गई है (ज़ीसर, 1998)।

इसको कॉफी और कोको के बागानों में छायादार वृक्ष के रूप में भी उपयोग किया जाता है। जो किसान लाभरहित कृषि से परेशान है, वे उच्च लाभ कम जोखिम आदि के लिए अपनी कृषि भूमि पर *मे. आर्बोरिया* लगा सकते हैं, क्योंकि इसकी तेजी से बढ़ने की प्रकृति, कृषिवानिकी प्रणाली के तहत ब्लॉक फसलों के साथ–साथ पंक्तियों या परिधीय उगाई जाने वाली कृषि फसलों पर कम प्रभाव डालती है। इसे महत्वपूर्ण औषधीय और धार्मिक पवित्र वृक्ष भी माना जाता है जिसकी बहुत व्यापक रूप से खेती की जाती है। जड़, फल, पत्ती, फूल, छाल आदि जैसे विभिन्न अंशों को औषधीय के रूप में इस्तेमाल किया जाता है और दशमौला रसायण (संरक्षण) मेध्या (स्मृति बढ़ाने वाला) और वृष्या (एफ्रोडीसिएक) के रूप मे भी इस्तेमाल किया जाता है। पेड़ के हिस्सों से तैयार दवाओं को पारंपरिक रूप से एंटीहेल्मिंटिक, एंटीमाइक्रोबियल, एंटीडायबिटिक, डायउरेटिक, हेपेटोप्रोटेक्टिव और एंटीपीलेप्टिक एजेंट के रूप में भी इस्तेमाल किया जा रहा है, (दीप्ती तथा अन्य 2015)।

3. वनस्पति विवरण

मे. आर्बोरिया आमतौर पर पूरे भारत में 1500 मीटर तक उगाया जाने वाला पेड़ है। पेड़ की ऊँचाई 15 मीटर, 1.5–2.5 सेमी की मोटाई, 6–9 सेमी का स्पष्ट बोल पत्तियां व्यापक रूप से 6–18 4–14 सेमी की होती है और फूल भूरे पीले रंग के 1 इंच के लगभग होते हैं। *मे. आर्बोरिया* का तना मजबूत होता है, शाखाओं के कुछ दागों को छोड़कर चिकना–पीलापन होता है। कुछ स्थानों पर तने की छाल 02–07 इंच मोटी, बाहरी सतह पीले–भूरे रंग की खुरदरी धारीदार व भीतरी सतह काफी चिकनी, लाल–भूरे रंग की होती है। इस वृक्ष मे फूल फरवरी से अप्रैल के दौरान लगते हैं इस समय पेड़ पत्ती रहित हो जाता है, जबकि फल मई से शुरू होकर जून तक लगते हैं। फूल शाखाओं के अंत में संकीर्ण शाखाओं में बँटे होते हैं। पीले रंग का फूल तुरही के आकार का 3.4 सेमी लंबा होता है। फूल प्रचुर मात्रा में नेक्टर से परिपक्क होता हैं, जिससे उच्च गुणवत्ता वाले शहद का उत्पादन होता है। *मे. आर्बोरिया* मे पुष्प कली साल मे दो बार खिलती है, जो साल–दर–साल और स्थानीय जलवायु परिस्थितियों के साथ भिन्न हो सकते हैं। परिपक्व फल 1 सप्ताह पीक फूल खिलने के समय के बाद और 2 महीने की अवधि में फल निकलते है। 4 डिग्री सेल्सियस पर संग्रहीत होने पर बीज लगभग तीन वर्षों तक जीवित रहता है।

4. प्रचार और खेती

मे. आर्बोरिया अपने उत्कृष्ट औषधीय और लकड़ी के गुणों के कारण तेजी से बढ़ने वाला वृक्ष है जो एक महत्वपूर्ण वनस्पति प्रजाति के रूप में उभर रहा है। इस पौधे का सबसे शक्तिशाली और औषधीय रूप से इस्तेमाल किया जाने वाला हिस्सा इसकी जड़ है और इसी कारण से पूरा वृक्ष मारा जाता है। *मे. आर्बोरिया* का प्राकृतिक प्रजनन बारिश के मौसम में जल्द ही हो जाता है। बीज के अंकुरण को प्रोत्साहित करने के लिए वैकल्पिक गर्मी और नमी आवश्यक है। बीजों को सीधे बोने या वानस्पतिक प्रसार द्वारा कृत्रिम प्रजनन किया जा सकता है। *मेलिना आर्बोरिया* की एक स्वस्थ प्रोजिनी को पुनः उत्पन्न करने के लिए कुछ एग्रोक्लिमैटिक जरूरतें हैं जहां यह वृक्ष अच्छी तरह से पनपते हैं। इनमें अच्छी जल निकासी वाली नम उपजाऊ मिट्टी, प्रचुर मात्रा में धूप, 750–4500 मिमी या उससे अधिक वर्षा आदि शामिल है (चित्र सं. 1)। इन सबको ध्यान मे रखते हुए ही वृक्षारोपन किया जाना चाहिए।

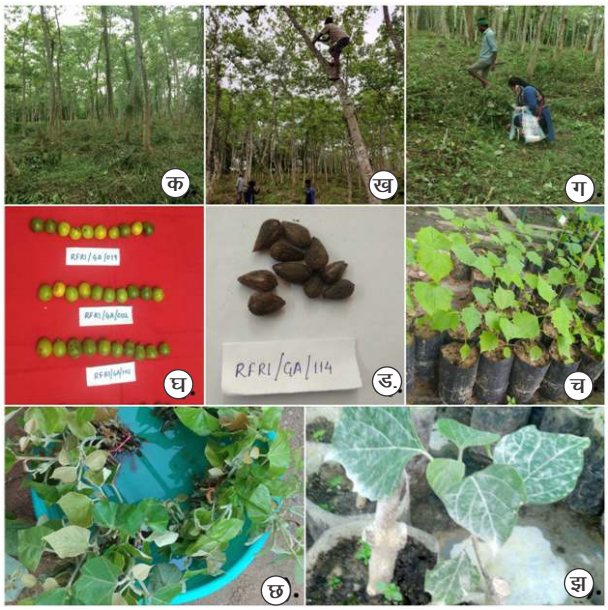

चित्र–(क) नहारोनि, स्तिथ, मेलिना आर्बोरिया वृक्षारोपण क्षेत्र (ख एवं ग) *मे. आर्बोरिया* बीज एकत्रित करते हुए (घ एवं ड.) मदर प्लांट से फल संग्रह (च) बीज से तैयार सीड्लींग्स (छ एवं झ) कटिंग से उगाये हुए प्लांटलेट्स।

4.1 बीज संग्रह, प्रसंस्करण, ड्राइंग और भंडारण

हरे रंग के परिपक्व फल पेड़ से स्वतः ही गिर जाते हैं गिरने के बाद यह पीले रंग में और लगभग तीन सप्ताह

के बाद भूरे काले हो जाते है। (सिम और वोंग, 1985)। फलों को इकट्ठा करने का सबसे अच्छा समय तब होता है जब वे पीले हरे हो। (आनंदलक्ष्मी, तथा अन्य 2016)। फलों को अप्रैल से जून तक अक्सर चयनित मदर ट्री से एकत्र किया जाना चाहिए। परिपक्व फल या तो जमीन से गिरने के बाद या पेड़ों को हिलाकर या पेड़ों पर चढ़कर एकत्र किए जाते हैं, (चित्र सं. ख–ग) संग्रह के बाद फलों को 24 घंटे के भीतर खुली टोकरियों या जाल में प्रसंस्करण स्थल पर ले जाया जाता है ताकि किसी भी काटने, सड़ने से बचाया जा सकें। प्रसंस्करण स्थल पर फलों को फिर रंग के आधार पर छाँटा जाता है: हरा पीला, पीला भूरा और भूरा काला। आगे की प्रक्रिया के लिए हरे पीले और पीले भूरे रंग को प्रचार के लिए स्वीकार किया जाता है। क्षतिग्रस्त ओर खराब बीजों को छाँटने और त्यागने के बाद स्वस्थ फलों को 24 घंटे के लिए पानी में भिगोया जाता है। इसके उपरांत बीज को गूदे से बाहर निकाला जाता है, जिसे डिपल्पिंग कहा जाता है। डिपल्पिंग प्रक्रिया के पूरा होने के बाद फलों को एक वायर–मेश ट्रे पर फैलाया जाता है और रस और पल्प को निकालने के लिए पानी से धोया जाता है। शेष पल्प को पत्थरों पर रगड़कर मैन्युअल रूप से हटा दिया जाता है, (चित्र सं. ड.)। बीजो को सुखाने के लिए सूरज के नीचे चादर, चटाई या टोकरी पर फैलाया जाता है। बीज 5–8 की नमी तक सूख जाने पर कोल्ड स्टोरेज (4–5 C) में रख दिया जाता है। जिन बीजों में कठोर परत होती हैं, वे पतली परत वाले बीजों की तुलना में अधिक समय तक जीवित रहते हैं, (नैथानी तथा अन्य 2006)। तत्पश्चात बीजों का उचित तापमान एवं नमी पर भंडारण कर संरक्षण किया जाता है। यह बीच के कृंतक, पक्षियों, कीटों और प्रतिकूल पर्यावरणीय स्थिति से होने वाले नुकसान से बचाने और लंबे समय तक जीवित करने के लिए किया जाता है (कारान्दांग और कारडांग, 2004)।

4.2 बीजारोपन

अच्छी उपज के लिए बुवाई से पहले 48 घंटों के लिए बीजों को पानी में भिगोया जाना चाहिए (एडेबिसी एवं अन्य 2011)। बीजों को तत्पश्चात नर्सरी बेड में 7.5 7.5 सेमी के अंतर पर दो सेमी की गहराई तक लगाया, जाता है। बीजों को अंकुरित होने के लिए गर्मी और नमी की जरूरत होती है, इसके लिए घास की एक परत के साथ बेड को डका जाना चाहिए। अंकुरण की अवधि लगभग बीस दिन होती है। (अदेबी एवं अन्य, 2013)

4.3 क्लोनल प्रचार

मे. आर्बोरिया को पुनर्जीवित करने का कुशल तरीका बड़े पैमाने पर क्लोनल प्रचार के माध्यम से है (ज़ेसर, 1998)। इस प्रक्रिया में 15–20 सेमी लंबाई और 1–1.5 सेमी व्यास वाले मदर प्लांट से कटिंग, जिसमे न्यूनतम तीन नोड एकत्र हो, ली जाती है। कटिंग्स को 10 मिनट के लिए बेविस्टीन उपचार के बाद कटिंग के एक छोर को बारीक तिरछा काट दिया जाता है, जबकि दूसरे छोर को पिघले हुए पैराफिन वैक्स में डुबोकर वैक्सिंग की जाती है। बाद में कटिंग का तिरछा कटा भाग को एनएए 100 पीपीएम, 24 घंटे या इंडोल–3–ब्यूटिरिक एसिड (आईबीए) 100 पीपीएम, 24 घंटे के लिए डुबाया जाता है। हार्मोनल उपचार के बाद कटिंग को मिट्टी में पॉलीबैग में स्थानांतरित किया जाता है और फिर ग्रीन हाउस में रखा दिया जाता है। यदि मिट्टी सूखी हो तो दिन में एक बार हल्की सिंचाई देनी चाहिए। लगभग 15–20 दिनों के बाद नोड्स से पत्ते निकलने लगते है। एक महीने के बाद पौधों को खेत में लगाया जाता है।

निष्कर्ष

यह शोध–पत्र पारंपरिक औषधीय पौधों के रूप में *मेलिना आर्बोरिया रोक्सब.* (गंभारी) के महत्व को दर्शाता है। चूंकि यह एक तेजी से बढ़ता हुआ बहुउद्देशीय औषधीय पौधा है, इसलिए इसमें मानक तकनीकों का उपयोग करते हुए बड़े पैमाने पर इनका प्रचार और वर्धन करके, इसके मिलावटी और वैक्लिपक पदार्थों के उपयोग को रोके जाने की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. अदेबीसी, एमण्य तोलोपोप, के.य माइकल, एफ़.ए. और Adewunmi, एण्ड (2013). सीड केमिकल प्रीमिंग फॉर जर्मिनेशन एंड सीडलिंग विजौर ट्राइट्स इन मेलिना (मेलिनारबोरी) सीड्स फ्रॉम डिफरेंट फ्रूट मातुरित्य लेवल्स. रिसर्च जर्नल ऑफ़ फॉरेस्ट्री, 7: 26–33

2. अदेबीसी, अदेबी, एम.ए. Adekunle, एम.एफ. और ओदेबी, ओ.ए. (2011). इफेक्ट्स ऑफ़ फ्रूट मातुरित्य एंड प्रे–सेविंग वाटर ट्रीटमेंट ऑन जर्मिनटीवे परफॉरमेंस ऑफ़ गमेलिनारबोरी सीड्स। जर्नल ऑफ़ ट्रॉपिकल फारेस्ट साइंस 23(4): 371–378.

3. आनंदलक्ष्मी, आर.य गीता, एस. बी.य सिंह, जी.य शिवकुमार, वी. और वॉरियर, आर.आर. (2016). इफ़ेक्ट ऑफ़ फ्रूट मातुरित्य स्टेजेस ऑन द जर्मिनेशन एंड स्टोरेज बेहेवियर ऑफ़ गमेलिनारबोरी. माय फारेस्ट–क्वाटर्ली जर्नल ऑफ़ फॉरेस्ट्री–अलाइड साइंसेज कर्नाटक फारेस्ट डिपार्टमेंट. 52(1–4): 69–76.

4. कारान्दांग, डब्ल्यू. और कारैंडांग, वी. (2004). एसएफआई 121 सिलेबसः आर्टिफीसियल फारेस्ट रेगेनेरशन. कॉलेज ऑफ फॉरेस्ट्री एंड नेचुरल रिसोर्सेज, यूनिवर्सिटी ऑफ द फिलीपिंस लॉस बैनोस कमिशन ऑन हायर एजुकेशन. पृ. 69–80

5. दीप्ति, पी.य हरिनी, ए. और हेगड़े, पी. एल. (2015). ए रिव्यु ऑन गम्हारी (मेलिना आर्बोरिया रोक्सब.). जर्नल ऑफ फार्माकोग्नॉसी एंड फाइटोकेमिस्ट्री, 4 (2): 127–132

6. ड्वोरक, डब्ल्यू.एस. (2004). वर्ल्ड व्यू ऑफ़ गमेलिना अरबोरीः ओप्पोर्तुनिटीज़ एंड चैलेंजेज. न्यू फॉरेस्ट्स, 28(2), 111–126

7. गोंजालेज रूबियो, एच. (2009). स्टैंड स्ट्रक्चर डेवलपमेंट इफेक्ट्स ऑन वुड क्वालिटी ऑफ़ मेलिना (मेलिना अरबोरी रोक्सब.) (डाक्टरल दिसेर्ततिओन यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिसौरी कॉलोम्बिया)

8. हैमिल्टन, पी. सी., चैंडलर, एल. आर.ए ब्रॉडी, ए. डब्ल्यू.ए और कॉर्नेलियस, जे. पी. (1998). ए फाइनेंसियल एनालिसिस ऑफ़ ए स्माल स्केल मेलिना अरबोरी रोक्सब. इम्प्रूवमेंट प्रोग्राम इन कोस्टा रिका. न्यू फॉरेस्ट्स, 16: 89–99.

9. हैरिंगटन, जे. (1972). सीड स्टोरेज एंड लोंगेविटी. इनः कोज़लोस्की, टीटी (एड), सीड बायोलॉजी, वॉल्यूम III- अकादमिक प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. 145–245.

10. आईएसएफ़आर, (2013). भारत राज्य वन रिपोट, भारतीय वन सर्वेक्षण, देहरादून, भारत सरकार.

11. नैथानी, आर.य वरही, बी.य साहू, के.के. और नैथानी, एस.सी. (2006). पोस्ट हार्वेस्ट स्टोरेज फिजियोलॉजी ऑफ़ *मेलिना अरबोरी रोक्सब.*। इंडियन जर्नल ऑफ प्लांट फिजियोलॉजी .11 (1): 20–27.

12. सिम, बी.एल. वोंग, सी. वाई. (1985). मैकेनिकल एक्सट्रैक्शन एंड क्लीनिंग ऑफ़ गमेलिनारबोरी नट्स. दानिदा वन बीज केंद्र, तकनीकी नोट नं. 20

13. तिवारी, डी. एन. (1995). ए मोनोग्राफ ऑन गम्हारी (*मेलिना आर्बोरिया रोक्सब.*), इंटरनेशनल बुक डिस्ट्रीब्यूटर्स, देहरादून

14. वर्मा, पी.ए अरविंद बिजल्वाण, ए.ए शंखवार, ए.के, डोबरियाल, एम. जे. आर, जैकब, वी. और रथौडे, एस. (2017). स्केलिंग अप एन इंडिजेनस ट्री (मेलिना आर्बोरिया) बेस्ड एग्रोफोरेस्ट्री सिस्टम्स इन इंडिया, 3 (6): 73–77

15. ज़ेसर, डी. (1998). Vegetative propagation ऑफ मेलिना (*मेलिना आर्बोरिया रोक्सब.*). इनः सीएएमसीओआरई. इंटरनेशनल ट्री ब्रीडिंग शॉर्ट कोर्स बुक, नॉर्थ कैरोलिना स्टेट यूनिवर्सिटी, रैले, नॉर्थ कैरोलिना, यूएसए, पृ. 27–34

तारा भूयाँ
परियोजना सहायक

बाँस उत्पादन : कृषकों की समृद्धि का आधार

डॉ. अजय ठाकुर, वैज्ञानिक–एफ, राकेश प्रकाश, तकनीकी अधिकारी एवं संगीता भट्ट, तकनीकी अधिकारी
आनुवांशिकी एवं वृक्ष सुधार प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

हम सभी अवगत हैं कि बाँस एक सर्वसुलभ तथा बहु–उपयोगी पौधा है। विश्व भर में बाँस की 1200 से अधिक प्रजातियां पायी जाती हैं, भारतवर्ष में ही 125 भारतीय तथा 11 बाहरी देशों की प्रजातियां हैं। बाँस न तो पेड़ हैं, न ही घास है, यह तो एक अद्भुत लकड़ी प्रदान करने वाला घास है जो कि प्रति दिन आधा मीटर से ज्यादा बढ़ता है और तीन साल में उपयोग के लिए तैयार हो जाता है। बांस जिसे कभी गरीबों की लकड़ी कहते थे, आज हरे सोने के नाम से जाना जाता है।

आज की विकास की दौड़ में लकड़ियों की आवश्यकता इतनी बढ़ी कि मांग की पूर्ति नहीं हो पा रही है। आज सभी तरह की लकड़ियों से अलग बाँस की उपलब्धता भी सीमित है। सीमित उपलब्धता से बाँस के मूल्य में बढ़ोतरी होती जा रही है। आज बाँस अपनी गुणवत्ता तथा मोटाई के हिसाब से खुदरा भाव 80–150 रू. प्रति बाँस तक बिकता है। थोक मूल्य भी 60–90 रू. के बीच है। इसके कई कारण हैं – जैसे कि मूल्य अस्थिरता का डर, बाँस उत्पादन के समुचित ज्ञान का अभाव, नई प्रजातियों की अनुपलब्धता, पौधारोपण तथा उत्पादन के बीच आय का न होना, कम बाँस के लगने का परिणाम है कि बाँसों के मूल्य में लगातार वृद्धि हो रही है, फलस्वरूप इस पर निर्भर उद्योंगों जैसे की लुगदी, कागज एंव वस्त्र, हस्तशिल्प, फर्नीचर, चटाई, बैम्बू बोर्ड, पंतग, चारकोल, अगरबत्ती निर्माण, जैसे कि स्कैफोल्डिंग, सीढ़ी, बाड़ आदि को कच्चा माल मंहगी दरों पर मिल रहा है। छोटे दिखने वाले उद्योग जैसे अगरबत्ती निर्माण तथा पंतग निर्माण में ही बाँस की अनुमानित 1000 करोड़ वार्षिक की खपत है। इस तरह अन्य उद्योगों में भी खपत निरन्तर बढ़ रही है। इसलिए बाँस के मूल्यों के निकट भविष्य में बढ़ते रहने की संभावना है।

अन्य दो कारणों जैसे कि समुचित उत्पादन ज्ञान या खेती की तकनीकी तथा नई प्रजातियों की उन्नत किस्में उपलब्ध कराने की दिशा में वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून ने काफी सफलता पाई है। संस्थान की केन्द्रीय पौधशाला में इस मानसून तक 1,00,000 उन्नत किस्म के बांस के पौधे होने लगेंगे। इनका उत्पादन मांग देखकर बढ़ाया भी जा सकता है। बाँस की खेती की जानकारी भी विकसित की गई है जो कि प्रजाति तथा उपयोग पर आधारित है। हमारी परिधि में पहाड़ी तथा मैदानी क्षेत्र आता है। उच्च पहाड़ी क्षेत्रों में मुख्यतः रिंगाल जो कि 1.2 से. मी. होता है, लगाया जाता है। इसका मुख्य उपयोग हस्तशिल्प में है। व्यवसायिक तौर पर उत्पादन के लिए मोटे किस्म का बाँस उचित है। निम्न पहाड़ी क्षेत्रों में 1500 मी. ऊँचाई तक इस प्रकार की एक प्रजाति डैन्ड्रोकैलेमस सामदेवाई या मग्गर को लगाया जा सकता है। यह हिमाचल तथा उत्तराखण्ड में पाया जाता है। इस बाँस की लम्बाई 25 मी. तथा जड़ों के पास यह 15 से.मी. तक मोटा होता है, यह लगभग ठोस बीच का छेद 3.4 से.मी. तक होता है। इसी तरह मैदानी हिस्सों के लिए उपर्युक्त प्रजातियों में प्रमुख है *बैम्बूसा बालकोवा* या भालूका बाँस। यह पूर्वोत्तर भारत की प्रजाति है तथा उत्तर तथा मध्य भारत में आसानी से बढ़ती है। यह ठोस बाँस है तथा आकार प्रकार में पहले के समान है। *बैम्बूसा टुल्डा* (जाति बाँस), बैम्बूसा न्यूटंस (न्यूटन बाँस) तथा *बैम्बूसा वैल्गारिस* (हरा बाँस) 20–25 मी. लम्बाई वाला बाँस है, जिनकी मांग फर्नीचर उद्योग में होती है। यह मध्यम मोटाई वाला बाँस है जो कि अच्छे मूल्य में बिकता है। यह बाँस मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है। एक अन्य बाँस लाठी बाँस, मैदानी क्षेत्रों में शुष्क से लेकर नमी युक्त क्षेत्रों में लगाया जाता है। यह की 15 मी. ऊँचाई वाला बाँस है जिसकी मांग स्कैफोल्डिंग, पोल, सीढ़ी तथा बाड़ के व्यवसाय में बहुत है। दो अन्य बाहर के देशों के बाँस *जाइलेन्ट्योक्लोवा अट्टासैवैलेसीया* या मोटा काला बाँस तथा *डैन्ड्रोकैलेमस एस्पर* या सफेद बाँस भी तेज बढ़त वाला बाँस है जिनकी व्यवसायिक मांग हो सकती है। ये बाँस 25 मी. से भी अधिक लम्बे होते हैं। इनका इस्तेमाल खाद्य पदार्थ (बाँस प्ररोह), फर्नीचर, इमारती इस्तेमाल, अगरबत्ती, हस्तशिल्प आदि में होता है। बाँस को खेत में लगाने के पांच वर्षों के बाद आय प्राप्त होना शुरू हो जाता है। इसके बाद हर वर्ष बाँस को काटकर आप आय प्राप्त करते हैं। यह प्रक्रिया बाँस के फूल आने तक चलती रहती है। बाँस में

फूल आने से सभी बाँस सूख जाता है। बाँस के शुरू आती वर्षों में (5–8 वर्षों तक) 70,000–80,000/–प्रति हैक्टे. तथा बाद के वर्षों में 1,50,000 प्रति हैक्टे. की आय प्राप्त होती है।

इन सभी बाँस को लगाने तथा इनसे संबंधित उद्योग लगाने के लिए राष्ट्रीय बाँस मिशन सहायता व धनराशि उपलब्ध कराता है। बाँस के बढ़वार को देखते हुए तथा इसके उत्पादन को देखते हुए इसकी कृषि को बढ़ाना चाहिए। यह किसानों की आय बढ़ाने में भी मदद करेगा।

डॉ. अजय ठाकुर
वैज्ञानिक–एफ

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-04 जुलाई–दिसंबर,2020

हिमालयी मृदा के संरक्षण में बांज के वृक्षों की भूमिका

डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल, वैज्ञानिक–ई
वन पारिस्थितिकी एवं जलवायु परिवर्तन प्रभाग, वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

पृथ्वी पर मृदा एक महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन है जो प्रत्यक्ष रूप से वनस्पतियों और धरती पर मानव जीवन तथा पशुओं को अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करती है। मृदा की परिस्थितिकी में एक प्रमुख भूमिका है। मिट्टी नमी, पोषक तत्व और पौधों के लिए भौतिक सहायता प्रदान करती है और विषाक्त पदार्थों के लिए एक फिल्टर और प्राकृतिक कचरे के लिए एक रिसेप्टर के रूप मे कार्य करती है। अगर देखा जाए तो वानिकी में पेड़ केवल एक फसल है जबकि मिट्टी एक संसाधन है। मिट्टी की वनावट तथा उसके संरक्षण में पौधों की प्रमुख भूमिका होती है। पौधों की जड़े शिलाओं के विघटन में उन्हें ढीला करने में मिट्टी की गहरी सतह तक पानी व वायु ले जाने मे सहायक होती है। पौधे मिट्टी में खाद मिलाकर तथा उसकी सतह को एक संरक्षक परत प्रदान करते है। जो वर्षा तथा हवा से मिट्टी के कटाव को रोकती है और मिट्टी को जीवन प्रक्रिया के लिए उपयुक्त बनाते हैं।

वनस्पति के अभाव के कारण कृत्रिम अथवा प्राकृतिक कारकों द्वारा मिट्टी का खंडित होना या टूट कर गिरना या पानी के साथ बह जाने को मृदा क्षरण या मृदा अपरदन कहते हैं। नदियों अथवा अन्य बहते हुए जल स्त्रोत किनारों की भूमि काटकर मिट्टी को ऊंचे स्थानों से काटकर नीचे की ओर बहाकर ले जाते है। वर्षा भी मृदा क्षरण में एक कारक है वर्षा के जल में धुली हुई गैसों की रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप ठोस चट्टानों का अपक्षय होता है। ऐसा जल भूमि में घुसकर अधिक विलय पदार्थों के कुछ अंश को भी घुला लेता है और इस प्रकार काफी पदार्थ बह जाते है। वर्षा के बाद जब धूप पड़ती है तो धूप में चट्टानों में दरारें फैल जाती है और पत्थर टूट जाते है। रात में ठंड पड़ने या फिर वर्षा से चट्टानें सिकुड़ती है और इसमें दरारें और बड़ी हो जाती है। अधिक ठंड पड़ने से पानी दरारों के अन्दर जम जाता है और दरारों को और बड़ा करके चट्टानों को तोड़ देता है। वनों के नीचे की मिट्टी की संरचना अच्छी होती है एंव उनमें पानी को सोखने की क्षमता भी ज्यादा होती है।

हिमालय एक विशाल पर्वत श्रृंखला है जिसकी आठ विकासशील देशों में विस्तार प्रणाली है। और एक तथ्य कि भारत एक बहुत विविधता वाले देश के रूप में मान्यता प्राप्त और दुनिया में 10 सबसे बड़े वन क्षेत्रों मे से एक है। वो मुख्य रूप से हिमालय की वजह से ही है। हांलाकि यह भारत के भौगोलिक क्षेत्र का केवल 18 ही है किन्तु भारतीय उपमहाद्वीप के 50 वन आच्छादित क्षेत्र एंव 40 प्रजातियों के लिए हिमालय ही जिम्मेदार है।

पूरा हिमालयी क्षेत्र मिट्टी के कटाव से प्रभावित है। एक बहुत बड़े पैमाने पर हिमालय की शिवालिक रेंज में वनों के कटान के कारण मिट्टी के सीधे बारिश के संपर्क में आने से पूरी सतही मिट्टी आसानी से हट के पानी के साथ बह गई। हिमालय का ज्यादातर हिस्सा मुख्यतः शिवालिक रेंज जो कि तलहटी का प्रतिनिधित्व करता है औ उत्तरी तथा पूर्वी भारत के राज्यों में स्थित है वा बना है बलुओं पत्थर, भोल और नदी द्वारा लाए गए पदार्थों से और इस वजह से यहां की मिट्टी बहुत गहरी है।

गंगा नदी के आसपास तथा हिमालयी क्षेत्रों में संकट सब से अधिक है और या निरंतर रूप से बढ़ती हुई आबादी के साथ बढ़ रहा है। मिट्टी की उर्वरकता में लगातार गिरावट उत्तरी भारत के जटिल ढलान वाले पहाड़ी क्षेत्रों में स्पष्ट है इस मुद्दे की कई मंचों पर वकालत की गई है। यह संकट प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण को दर्शाता है। जैसे मिट्टी का कटाव, जलाशयों, नदियों, झीलों में गाद संचय और दुलर्भ प्रजातियों के विलुप्त होने एंव कृषि उत्पादों में गिरावट भूस्खलन बाढ़ की आवृत्ति।

मिट्टी नमी, पोषक तत्व और पौधों के लिए भौतिक सहायता प्रदान करती है और विषाक्त पदार्थों के लिए एक फिल्टर के रूप में कार्य करती है।यह एक अनुमान है कि भारत के 329 मिलियन हेक्टेयर भौगौलिक क्षेत्र में से 167 मिलियन हेक्टेयर गंभीर पानी और हवा के कटाव से प्रभावित है।

हिमालय क्षेत्र के बड़े हिस्से में मिट्टी को जल धारण करने की क्षमता के घटने की वजह से, सीमांत भूमि में खेती करने, तीव्र ढलानों एंव पथरीली जमीन पर एंव बिना वनस्पति के भूमि की वजह से बहुत तबाही हो रही है। बहुत जगहों पर सतही मिट्टी पूरी तरह बह चुकी है और निचली सतह वाली मिट्टी पर खेती की जा रही है। मिट्टी के कटाव की औसत दर 20 से 50 टन/हेक्टेयर/साल है। लेकिन गंभीर रूप से भूमि कटाव की दर 200–500 टन/हेक्टेयर/साल भी हो जाती है। इस तरह के भूमि

कटाव को रोकने के लिए सुरक्षा, संरक्षण और प्राकृतिक संसाधनों को बचाने के लिए कुछ रणनीति विकसित की गई है। जैसे कि ईंधन, चारा, फल, बहुउद्देशीय पौधों और पेड़ों को लगाना। सामाजिक बायोफेसिंग और अन्य तरह की बाड़ को पुर्नजीवित करना, वनस्पतियों को अपने आप बढ़ने देना। वन क्षेत्र और चराई भूमि पर चराई का दबाव कम करके मिट्टी के कटाव को रोकना, वैकल्पिक ऊर्जा/मिनी हाईडल, निर्धूम चूल्हे/सौर ऊर्जा बायोगैस, पवन ऊजा, आदि का उपयोग करना।

हिमालयी क्षेत्र में मिट्टी संरक्षण के लिए सबसे अच्छा तरीका वन क्षेत्र में वृद्धि करना है। पेड़ों की अंधाधुंध कटाई कंद कर दी जानी चाहिए और नए पेड़ लगाने के प्रयास करने चाहिए। पहाड़ी क्षेत्रों में मिट्टी का कटाव की वजह नदी में बाढ़ आना है और बाढ़ आने से उसमें सतही मिट्टी बह जाती है इस समस्या से नदियों में बांध निर्माण करके बचा जा सकता है। बांध पानी की गति को रोकते है और मिट्टी का कटाव होने से बचा लेते हैं।

हिमालयी बांज सदाबहार एंव औसत से लेकर बड़े कद का पेड़ है जो कि समुद्रतल से 800 से 3800 मी. की ऊँचाई पर हिमालयी क्षेत्र में पाया जाता है। इसकी 35 से ज्यादा प्रजातियां पाई गई है जो कि हिमालयी क्षेत्र में बहुतायत में पाए जाते है। बांज के जंगल अग्नि मुक्त एक बंद वनांचल के रूप में चिन्हित है। नमी एंव पानी को सोखने की क्षमता बांज के जंगल में ज्यादा होती है क्योंकि उनकी कैनोपी बहुत घनी होती है बांज के वृक्ष ज्यादा उत्पादन करते है। जो की मृदा के texture एंव structure को बेहतर बनाता है और उससे मृदा की जल धारण क्षमता भी बढ़ जाती है। बांज के वृक्ष का आर्थिकी एंव पारिस्थितिकी मूल्य और अन्य प्रजातियों के वृक्ष से कई ज्यादा है क्योंकि ये पहाड़ी खेती से बहुत नजदीकी से जुड़ा है इसकी पत्तियां जानवरों के लिए चारे का काम करती है एंव गिरी हुई पत्तियां खाद बनाती है और लकड़ी, आग जलाने, फर्नीचर बनाने के काम आती है। बांज के वृक्ष पानी को मृदा के अन्दर तक सोखने में सहायता प्रदान करते है क्योंकि इनके नीचे अन्य प्रजातियों के पौधें ज्यादा पाये जाते है और कार्बनिक पदार्थ भी ज्यादा पाए जाता है। उत्तराखण्ड में बांज के जंगल भूमि एंव जल संरक्षण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बांज के जंगल पहाड़ी झरनों एंव नालों के पुनः चालन एंव ज्यादा पानी देने की क्षमता को भी बढ़ाते हैं एंव जल आपूर्ति को बनाय रखने में सक्षम है। बांज के पेड़ की पत्तियां जब भूमि पर गिरती है तो पोषक तत्व की पुनर्चक्रण होती है एंव तेज गति से कार्बनिक पदार्थ बनता है। क्योंकि इन जंगलों में नमी बहुत होती है जिसकी वजह से मृदा सूक्ष्म जीव की संख्या भी अधिक होती है और ज्यादा कार्बनिक पदार्थ बनने से मृदा को Bulk density घट जाती है सरंध्रता बढ़ जाती है। इससे पानी के मदा के अन्दर जाने की क्षमता बढ़ जाती है और surface runoff घट जाता है और मृदा क्षरण भी घट जाता है ।

उत्तराखण्ड में चीड़ की अपेक्षा बांज के वृक्ष ज्यादा अच्छी वस्तुएँ प्रदान करते हैं इसलिए लोग ज्यादा बांज के वृक्षों पर निर्भर है और बहुत तेजी से बांज के वृक्षों का दोहन हो रहा है। इसलिए बांज अब हिमालयी क्षेत्रों में सिर्फ कुछ चोटियों पर सीमित रह गया है। बांज के पेड़ हटने से मृदा Solution में पोषक तत्वो के सांद्रता में एवं कार्बनिक पदार्थ में कमी आई है और इससे मृदा की उर्वरकता एंव उत्पादन क्षमता में कमी आई है। इन सबसे वन पारिस्थितिकी तंत्र दिन प्रतिदिन खराब होता जा रहा है और जिससे पर्यावरण को भी नुकसान हो रहा है। बादल फटने जैसी त्रासदी हिमालयी पारिस्थितिकी तंत्र में आम हो गई है। वृक्ष पहाड़ी पारिस्थितिकी तंत्र का अभिन्न अंग है और उनके दोहन से तबाही मच ही बच सकती है। एक सर्वे में पाया गया है कि 500 में से 78 जंगली बांज की प्रजातियां विलुप्त होने की कगार पर है। बांज के पेड़ मृदा को हवा के द्वारा मृदा क्षरण होने से बचाते है। कुछ बांज की प्रजातियों की जड़े बहुत गहरी होती है जो कि नीचे की सतह से पोषक तत्वों को सोखती है एंव पत्तियों के गिरने से वे पोषक तत्व दोबारा मिट्टी में आ जाते है। दूसरा उपयोगी प्रभाव यह है कि Nutrient cycling की वजह से leaching कम होती है और जिसकी वजह से ज्यादा से ज्यादा पोषक तत्व अपने सतह पर टिके रहते है। बांज के पेड़ हिमालयी वन मृदा निर्माण में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि बांज के जंगल लंबे समय तक बढ़ सकते हैं इसलिए यह लंबे समय तक मृदा का क्षरण होने से बचाते हैं।

डॉ. पारूल भट्ट कोटियाल
वैज्ञानिक–ई

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-04 जुलाई-दिसंबर,2020

मृदा स्वास्थ्य संतुलन : एक चुनौती

डॉ. प्रतिमा पटेल, वैज्ञानिक–डी
वन अनुसंधान संस्थान सम विश्वविद्यालय, देहरादून

मृदा स्वास्थ्य को मिट्टी की उस गुणवत्ता या क्षमता के रूप में जाना जाता है जो पारिस्थितिक तंत्र की जीवंतता को बनाये रखती है। मृदा का महत्व खाद्य पदार्थों के उत्पादन से संबंधित है अतः स्वस्थ मृदा खाद्य स्थिरता के लिए बेहद आवश्यक होती है। वास्तव में 95 भोजन मिट्टी से सीधे या परोक्ष रूप से उत्पादित होता है और प्रति व्यक्ति औसत कैलोरी खपत का लगभग 60 मिट्टी में उगाई जाने वाली फसलों से ही आती है। मृदा के अन्य प्रमुख कार्यों में भूमिगत जल को इकट्ठा करने में मृदा सतत अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। ''संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन'' के अनुसार वायुमंडल की तुलना में मृदा तीन गुना अधिक कार्बन धारण कर सकती है और जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने में मदद कर सकती है। देखा जाये तो मृदा कई पोशक तत्वों जैसे नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और कार्बन इत्यादि के चक्रीय विधि को पूरा करने और इनके संग्रहण में प्रमुख भूमिका निभाती है। इसके अलावा मृदा पौधों और जीव जन्तुओं को भी एक मजबूत आधार प्रदान करती है।

चित्र–1 मृदा का कटाव

चित्र–2 मृदा कां क्षरण

मृदा की उपर्युक्त विशेषताओ से स्पष्ट है कि मृदा सिर्फ भूमि का एक पृष्ठ हिस्सा भर नहीं है, बल्कि यह मानवीय जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है साथ ही उपजाऊ मृदा का निर्माण एक दिन में ही नहीं होता बल्कि इसके लिए लाखों वर्षों का समय लगता है। मृदा की गुणवत्ता को खराब करने वाले कारणों में कीटनाशक क्लोरीनेटेड कार्बन जैसे विषाक्त पदार्थ और हर्बीसाइड्स जैसे कीटनाशक मौजूद होते हैं, कीटनाशक ऐसे कृत्रिम जहरीले नाशक होते हैं जो कीटों और खरपतवार को नष्ट करने के लिए कृषि एवं अन्य गतिविधियों में इस्तेमाल किया जाता है। इसके अलावा क्लोरीनेटेड कार्बन जैसे विषाक्त पदार्थ के बारे में कहे तो कार्बेनेटस और आर्गेनोफास्फेट जैसे रसायनों से युक्त डी डी टी और अन्य क्लोरीनेटेड कार्बनिक पदार्थो ने मृदा को बड़े स्तर पर दूषित किया है। मृदा के द्वारा पौधो और जीवों में पहुँचकर इन पदार्थो ने स्वास्थ्य पर गंभीर प्रभाव डाला है। हर्बीसाइड्स का भी पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

इसके अलावा अकार्बनिक उर्वरक जैसे अकार्बनिक नाइट्रोजन के अत्यधिक उपयोग से मिट्टी के अमलीकरण को बढ़ावा देकर मृदा स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचा है। औद्योगिक इकाइयों के द्वारा निकलने वाले अपशिष्टों के गलत तरीके से निपटान के कारण बड़े स्तर पर मृदा प्रदूषण हो रहा है।

मृदा की गुणवत्ता को खराब करने वाले कुछ और कारणों में ठोस अपशिष्ट जिनमें प्लास्टिक, मेटल जैसे अन्य ठोस अपशिष्टों का अनुचित निपटान भी मृदा प्रदूषण की श्रेणी में आता है। इसके अलावा शहरों में भी अलग–अलग प्रकार के अपशिष्टों का निर्माण होता है जों मृदा को प्रदूषित करता है। मृदा के गुणवत्ता के खराब होने का सीधा प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ता है ''खाद्य एवं कृषि संगठन'' ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि मानव की तंत्रिका तंत्र से लेकर यकृत, गुर्दे, हड्डी आदि सभी नकारात्मक रूप से प्रभावित होते हैं। इसके अलावा इसके आर्थिक प्रभाव को समझे तो मानव स्वास्थ्य पर नकारात्मक असर पड़ने से अर्थव्यवस्था को भारी नुकसान होता है। साथ ही मृदा प्रदूषण से पशुपालन पर नकारात्मक असर पड़ता है मृदा के गुणवत्ता के खराब होने से खाद्यान्न संकट भी पैदा हो जाता है। मृदा में मौजूद जहरीले रसायन पौधों को विषाक्त करने के साथ –साथ उसकी उत्पादकता को भी कम कर देते है जिससे खाद्यान्न संकट गहराने की समस्या उत्पन्न हो जाती है। मृदा की गुणवत्ता खराब होने से मृदा की जलसंचयन की क्षमता में भी कमी आ जाती है और मृदा के अपरदन की तीव्रता बढ़ जाती है प्रदूषित मृदा बारिश के समय जल संचय भी कम कर पाती है और जो जल संचय होता भी है वो विषाक्त होता है। मृदा की गुणवत्ता खराब होने से कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। सिंचाई के अनुचित विधियों को अपनाने से भी मृदा की लवणता बढ़कर इसके स्वास्थ्य को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

मृदा एक ऐसा संसाधन है जो सीमित है। पूरी पृथ्वी के सिर्फ 22 फीसदी भूभाग पर ही खाद्यान्न पैदा होता है ''खाद्य एवं कृषि संगठन'' के मुताबिक उसमें से लगभग एक तिहाई जमीन बंजर हो चुकी है। इसकी मुख्य वजह प्रदूषण और वनों का कटाव शामिल है। ''संयुक्त राष्ट्र खाद्य एवं कृषि संगठन'' के मुताबिक धरती को पिछले 50 वर्षों में इतना नुकसान हुआ है कि पूरे विश्व में 815 मिलियन लोग खाद्य असुरक्षा का तथा 2 अरब लोग पोषण असुरक्षा का सामना कर रहे हैं। इसे रोकने के लिए सरकार कुछ प्रयास कर रही है। मृदा गुणवत्ता में कमी के

फलस्वरूप साल 2015 में भारत सरकार ने "मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना" का शुभारम्भ किया था। सरकार द्वारा जैविक कृषि को विभिन्न योजनाओं के द्वारा प्रोत्साहन देने के लिए राष्ट्रीय गोकुल मिशन और परम्परागत कृषि विकास जैसे योजनाएँ शामिल किया गया है।

इसके अलावा सतत कृषि के लिए राष्ट्रीय मिशन जैसे योजनाओं को भी सरकार ने शुरू किया है। इसके तहत कृषि के सतत विकास हेतु विभिन्न योजनाओं को संचालित किया गया है। दरअसल आज जलवायु परिवर्तन ने कृषि पर विपरीत असर डाला है और खाद्यान्न संकट पैदा किया है जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों से निपटने में मृदा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है क्योंकि मृदा में कार्बन को संग्रहित रखने की अद्भुत शक्ति होती है। इसलिए खाद्य संकट का शमन मृदा की गुणवत्ता को सुधारकर किया जा सकता है। इसके लिए सरकार द्वारा एकल फसल की जगह किसानों को मिश्रित फसल का प्रतिरूप और बहुफसल उगाने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। किसानो को जैविक उर्वरकों के उपयोग को बढ़ावा देना और रासायनिक उर्वरको के संतुलित उपयोग को ध्यान में रखते हुए व्यवस्थित खेती के तरीकों को अपनाना होगा जिससे मृदा का स्वास्थ्य उन्नत होगा और उसका बेहतर तरीके से उपयोग हो सकेगा।

डॉ. प्रतिमा पटेल
वैज्ञानिक–डी

केंचुआ खाद – एक संक्षिप्त जानकारी

पूर्णिमा श्रीवास्तव, पुस्तकालय सूचना सहायक एवं राजेश कुमार मिश्रा, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर (म.प्र.)

भारत एक कृषि प्रधान देश है और भारत की अर्थव्यवस्था का आधार भी कृषि ही है। कृषि उत्पादन को अधिक उन्नत बनाने के लिए प्रयुक्त लाभकारी तकनीकों को विश्व व्यापार पटल पर लाने के लिए जैविक तकनीकों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्हीं तकनीकों में से एक वर्मीकल्चर तकनीक है। इस तकनीक में केंचुआ का प्रयोग कर वर्मीकम्पोस्ट बनाया जाता है ।

चित्र–1:
केंचुआ खाद

केंचुआ को अंग्रेजी में Earthworm कहा जाता है। यह एक कृमि है जो लम्बा, वर्तुलाकार, ताम्रवर्ण का होता है। यह Oligokita संघ का सदस्य है। भारत में कई प्रकार के केंचुए पाये जाते हैं। इनमें से केवल दो ऐसे हैं जो आसानी से प्राप्त होते हैं। एक है फेरिटाइमा पॉसथ्यूमा (*Pheretima Posthuma*) और दूसरा है यूटाइफियस (Utaiphiuas) फेरिटाइमा पॉसथ्यूमा सारे भारतवर्ष में पाले जाते हैं। इन दोनों केवल शरीर रचना में ही भिन्न नहीं होते बल्कि इनकी वर्म कास्टिंग भी भिन्न प्रकार की होती है। केंचुए के मल को (Worm Casting) कहते हैं। फेरिटाइमा की वर्म कास्टिंग मिट्टी की पृथक् गोलियों के छोटे ढेर जैसी होती है और यूटाइफियस की कास्टिंग मिट्टी की उठी हुई रेखाओं के समान होती है।

चित्र–2:
केंचुआ

केंचुआ को किसानों का सच्चा मित्र एवं भूमि का आंत कहा जाता है। एक केंचुआ अपने जीवन काल में लगभग 250 केंचुए पैदा करने में सक्षम हैं। ये नवजात केंचुए लगभग 6–8 सप्ताह पर प्रजननशील अवस्था में आ जातें हैं। ये मिट्टी की उर्वरक क्षमता को बढ़ाता है। जिससे मिट्टी में नाइट्रोजन 7 गुणा, फास्फोरस 11 गुणा, पोटाश 14 गुणा बढ़ जाता है। केंचुएँ मिट्टी को पोली बनाते हैं जिससे हवा व पानी जमीन के अंदर सरलता से प्रवेश कर जाता है। केंचुआ द्वारा मिट्टी को खाद में परिवर्तित कर हमें केंचुआ खाद प्रदाय करते हैं जिसे 'वर्मीकम्पोस्ट' (Wormi compost) कहा जाता है। केंचुआ द्वारा जैव विघटनशील व्यर्थ पदार्थों के भक्षण और उत्सर्जन से उत्कृष्ट कोटि की कम्पोस्ट (खाद) बनाने को वर्मीकम्पोस्टिग हैं। इस खाद को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति तो बढ़ती ही है साथ ही फसलों की पैदावार व गुणवत्ता में भी बढ़ोत्तरी होती है। इस प्रकार केंचुआ खाद भूमि भौतिक, रसायनिक व जैविक दशा में सुधार कर मिट्टी की उपजाऊ शक्ति को टिकाऊ करने में भी महत्वपूर्ण योगदान देता है। केंचुआ खाद पोषण पदार्थों से भरपूर एक उत्तम जैव उर्वरक है। यह खाद बदबू रहित होता है और मच्छर व मक्खी भी नही बढ़तें हैं। इससे वातावरण भी प्रदूषित नहीं होता है। इसको तैयार करने में 2 से 3 माह का समय लगता है। केंचुआ खाद में गोबर खाद की अपेक्षा नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश तथा अन्य सूक्ष्म तत्व अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। अतः इसे मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है जिससे पौधों में वृद्धि होती है। 'वर्मीकम्पोस्ट' बनाने के लिए समस्त प्रकार के जैव–क्षतिशील कार्बनिक पदार्थ जैसे–गाय, भैंस, सूअर, भेड़, गधा तथा मुर्गीयों आदि के मल, बायोगैस स्लरी, शहरी कूड़ा, प्रौद्योगिकी खाद्यान्न व्यर्थ पदार्थ, फसल अवशेष, घास–फूस की पत्तियाँ, रसोई घर का कचरा आदि का प्रयोग किया जाता है।

चित्र–3:
केंचुआ खाद बनाने की प्रक्रिया

केंचुआ खाद तैयार करने की विधि

वैसे तो इस खाद को तैयार करने के लिए 100 वर्गफुट आकार की नर्सरी बेड पर्याप्त होती है। परन्तु इसे छोटे या

घरेलु स्तर पर और मध्यम या व्यावसायिक स्तर पर निर्माण किया जाता है। घरेलु स्तर पर खाद घर के पिछले खुले स्थान पर या लकड़ी के डिब्बे, बाल्टी आदि का प्रयोग किया जा सकता है। और व्यावसायिक स्तर पर केंचुआ खाद निर्माण हेतु किसी स्थाई शेड या ढांचे के निर्माण की आवश्यकता होती है।

केंचुआ खाद बनाने के लिए प्रयुक्त परते

1. प्रथम परत–रेत और कंकरीट जिससे पानी का रिसाव बना रहे।

2. दूसरी परत–मोटे कचरे जैसे–घास–फूस, केले के पत्ते, सूखे नारियल का जटा, गेहूँ के डंठल आदि बिछाएँ और पानी का छिड़काव करें।

3. तीसरी परत–मोटाई दो इंच सड़े हुए गोबर खाद का जमाव तथा पानी का छिड़काव।

4. चौथी परत–सड़ी हुई खाद और केंचुए को एक साथ डालें पतली परत के रूप में।

5. पाँचवी परत–सरलता से सड़ने वाले पदार्थ–गोबर, जैव–गैस स्लरी, सब्जियों, फलों के छिलके जिनका विघटन हो गया हो, को 10–15 इंच की मोटाई के परत में डालें।

6. छठवीं परत–सूखे पत्ते, भूसा, पुआल, घास एवं टाट या बोरी से ढंक दें। इस पर आवश्यकतानुसार पानी का छिड़काव करते रहें। जिससे कि अंदर नमी बनी रहे और केंचुए सक्रिय रहें।

केंचुआ खाद का भण्डारण

साधारणतया 60 से 70 दिनों में वर्मीकम्पोस्ट बन कर तैयार हो जाता है। यह चाय के पाउडर जैसा दिखता है तथा इसमें मिट्टी के समान सौंधी गंध होती है। खाद को हाथ से ही अलग करें। गैंती, कुदाली, खुरपी आदि का प्रयोग न करें। ताकि केंचुए सुरक्षित रहें। खाद को एकत्र कर छोटे–छोटे ढेर बनाए फिर उन्हें छानकर केंचुआ अलग करें। खाद का भण्डारण सदैव छायादार स्थान पर ही करें। सूखने पर प्लास्टिक बैग में भरकर सील किया जा सकता है।

केंचुआ खाद का उपयोग

छोटे स्तर पर उपयोग–

1– गमलों में मिट्टी और केंचुआ खाद का 1:3 के अनुपात में उपयोग करना चाहिए। इससे पौधों की उचित वृद्धि के साथ–साथ मिट्टी की उर्वरा शक्ति बहुत बढ़ जाती है।

2– नर्सरी के क्यारियों में मिट्टी को 2 से 4 इंच गहरा खोदकर 6 से 8 कि. ग्राम केंचुआ खाद प्रतिवर्ग मीटर क्षेत्र के अनुसार मिट्टी में मिला देते हैं।

3– गृहवाटिका में प्रयोग के लिए फूलों हेतु 2 भाग केंचुआ खाद 3 भाग उद्यान की मिट्टी का मिश्रण तैयार करना चाहिए। जबकि साग– सब्जियों, के लिए 1 भाग मिट्टी, 1 भाग गोबर खाद एवं 2 भाग केंचुआ खाद का मिश्रण तैयार करना लाभकारी पाया गया है।

वृहत या व्यावसायिक स्तर पर उपयोग

1– केंचुआ खाद को खेत तैयार करते समय मिट्टी में मिलाना चाहिए।

2– खाद्यान्न फसलों में वर्मी कम्पोस्ट 5 टन प्रति हैक्टेयर की दर से उपयोग करें।

3– सब्जी वाली फसलों में वर्मी कम्पोस्ट का उपयोग 10–12 टन प्रति हैक्टेयर करें।

4– फलदार वृक्षों में 1 से 10 कि. ग्राम आयु व आवश्यकतानुसार तनें के चारों तरफ घेरा बनाकर डालें।

केंचुआ खाद का लाभ–

1– केंचुए से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ती है।

2– भूमि की जलधारण क्षमता व उपयुक्त तापक्रम बनाये रखने में सहायक।

3– भूमि की उपयोगी जीवाणुओं की संख्या में वृद्धि होती है।

4– पौधों में पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता को बढ़ाता है जिससे पौधों का विकास अच्छा होता है।

5– केंचुआ खाद जलग्राही होता है जो वातावरण से नमी को सोखकर वाष्पीकरण तथा निक्षालन द्वारा पानी के नुकसान को रोकती है। अतः इस खाद का उपयोग करने पर पौधों को सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती।

6– इस खाद से खरपतवार की समस्या नहीं होती है।

7– इसमें मनुष्यों तथा पौधों को किसी भी तरह का नुकसान पहुँचाने वाले जीवाणु कवक आदि मौजूद नहीं होते।

8– इसके प्रयोग से भूमि के भौतिक, रासायनिक, जैविक आदि गुणों मे पर्याप्त सुधार होता है। परिणामस्वरूप् भूमि की उर्वरता दीर्घकालीन समय तक बनी रहती है।

9– मिट्टी में पोषक तत्वों की मात्रा बढ़ जाती है।

10–केंचुआ खाद में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश का अनुपात 5:8:11 होता है। अतः फसलों को पर्याप्त पोषक तत्व सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं।

11–इसके प्रयोग से मिट्टी उपजाऊ एवं भुरभुरी बनती है।

12–केंचुआ खाद के उपयोग से हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं और पर्यावरण प्रदूषण नहीं होता।

13–ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं।

14–यह बहुत कम समय में तैयार हो जाता है और कम खर्च में भी।

15–यह खाद बदबू रहित होता है और मच्छर व मक्खी भी नही बढ़तें हैं।

केंचुआ खाद से हानि

1– केंचुए खाद को अकेले प्रयोग करने से पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव देखा गया है ।

2– इसके अधिक प्रयोग से पौधें मर जाते हैं ।

केंचुआ खाद एक काले रंग का उप उत्पाद है। यह एक उत्तम खाद है। विदेशों में बच्चों को स्कूलों में ''वर्मी चाय एवं वर्मी सूप'' बनाने की विधि सिखाई जाती है। क्योंकि इसमें कोई भी हानिकारक रसायन नहीं होता है। केंचुए से प्राप्त अमीनो एसिड एवं एनजाइमस से दवाएँ तैयार की जाती हैं।यह पक्षी, पालतू जानवर, मुर्गीयां, मछलीयों के लिए खाद्य सामग्री के रूप में प्रयुक्त होता है। आयुर्वेदिक दवाईयां बनाने में भी इस्तेमाल किया जाता है। सौन्दर्य प्रसाधनों में भी इसका उपयोग किया जाता है। केंचुए के सूखे पाउडर में 60 से 65 प्रतिशत प्रोटीन होता है जिसका उपयोग खाने में किया जाता है।

एक सामान्य आय–व्यय के विवरण को देखते हुए यह स्पष्ट है कि 100 वर्ग मी. क्षेत्र में वर्मीकम्पोस्ट की यूनिट लगाकर 2 लाख 30 हजार रूपये प्रतिवर्ष कमाया जा सकता है। यह विवरण किसानों द्वारा बिना वित्तीय सहायता के घरेलू स्तर पर लगाई जाने वाली इकाईयों के सामान्य आय–व्यय को इंगित करता है।

पूर्णिमा श्रीवास्तव
पुस्तकालय सूचना सहायक

वन अनुसंधान ई-पत्रिका अंक-04 जुलाई–दिसंबर,2020

विलुप्त होता वन्य–जीव जगत

श्री राजेश कुमार मिश्रा, सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर, मध्य–प्रदेश

इस पृथ्वी पर विकसित विविध जीवन मानव की अनेक आवश्यकताओं को आदिकाल से ही पूर्ण करता रहा है और आज भी कर रहा है। प्रकृति में अनेकानेक प्रकार के पादप एवं जीव–जन्तु परिस्थितिक तन्त्र के अनुरूप विकसित एवं विस्तारित हुए हैं तथा जब तक पर्यावरण अनुकूल रहता है, उनका जीवन चक्र क्रमिक रूप से चलता रहता है और जैसे ही पर्यावरण में प्रतिकूलता आती है, पारिस्थितिक चक्र में व्यतिक्रम पैदा होने लगता है, जीव–जन्तुओं एवं पादपों पर संकट आना प्रारम्भ हो जाता है। पारिस्थितिकीय चक्र में व्यतिक्रम होने के परिणाम स्वरूप वर्तमान विश्व में अनेक जैव प्रजातियाँ विलुप्त हो जाने और अन्य अनेकों के संकटग्रस्त होने के कारण आज जैव विविधता के प्रति सम्पूर्ण संसार सचेष्ट है और अनेक विश्व संगठन तथा सरकारें इनके संरक्षण में प्रयत्नशील हैं। यह आवश्यक इसलिए भी है क्योंकि पारिस्थितिक चक्र में जीव एवं पादप आपसी सामंजस्य एवं सन्तुलन द्वारा ही न केवल विकसित होते हैं अपितु सम्पूर्ण पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान करते हैं। इस चक्र में व्यवधान आने अथवा कुछ जीव के विलुप्त हो जाने से सम्पूर्ण चक्र में बाधा उत्पन्न होती है जो पर्यावरण में असन्तुलन का कारण बनती है और मानव सहित सम्पूर्ण जीव–जगत के लिए संकट का कारण बनती है। जैव विविधता पर वर्तमान में सर्वाधिक संकट उत्पन्न हो रहा है तथा प्रतिवर्ष हजारों प्रजातियाँ विलुप्त होती जा रही हैं। विश्व में बड़े स्तर पर वनाग्नि अर्थात जंगली आग और प्रदूषण से जैव विविधता अत्यंत तेजी से नष्ट होती जा रही है और वन व जल में रहने वाले कई प्रजातियों के नष्ट होने का खतरा उत्पन्न हो गया है। प्रदूषण और तापमान के निरंतर बढ़ने से जहाँ समुद्री जल जीव मर रहे हैं, वहीं वन्य जीव–जंतु एवं पशु–पक्षियों की प्रजातियां नष्ट हो रही हैं। समुद्री जल जीवों में डॉल्फिन और व्हेल्स सहित अन्यान्य जीव लुप्त हो रहे हैं। नेशनल ज्योग्राफिक पत्रिका के ताजा अंक के अनुसार समुद्री जलजीवों की असमय मृत्यु का मुख्य कारण जंगली आग के साथ–साथ समुद्र में लाखों टन तेल का रिसाव होना है। इससे समुद्री जीवों, विशेषकर डॉल्फिन को सांस लेने में कठिनाई हो रही है, और दम घुटने से उनकी मौतें हो रही हैं। वन्य जीवों का विलोपन पृथ्वी पर जीवन के लिए एक आपातकाल जैसी स्थिति के समान है और इस प्रक्रिया पर लगाम नहीं लगने से मानव सभ्यता और अस्तित्व को खतरा है, क्योंकि मनुष्य सहित सभी जीवों से बना पारितंत्र पृथ्वी पर जीवन को संचालित करता है।

चित्र–1:

मानव सभ्यता के विस्तार और बढ़ती आबादी के कारण जीवों के पर्यावास सिकुड़ते जा रहे हैं। विश्व के वन, आर्द्रभूमि, झील और अन्य पर्यावास कृषि, मकान, सड़क निर्माण, पाइपलाइन, उद्योग आदि के चलते लगातार नष्ट हो रहे हैं। प्राकृतिक संसाधनों का दोहन, वन उन्मूलन, खनन, शहरीकरण और औद्योगिक उत्पादन, कुछ प्रमुख मानवीय गतिविधियां हैं, जिनकी वजह से वन्य जीवों का आवास उजड़ता है। पर्यावास नष्ट होने से जीव जातियां पहले दुर्लभ होती हैं और यदि उचित संरक्षण के प्रयास नहीं हुए तो वे धरती से लुप्त हो जाती हैं। जीव जातियों का स्थायी विलोपन एक तरफ प्रकृति के पारितंत्र को कमजोर बनाता है, तो दूसरी ओर पृथ्वी के समग्र परिवेश और मानव जीवन की गुणवत्ता को गहरे प्रभावित करता है।

प्रत्येक जीव को अपना अस्तित्व बनाए रखने और वंश वृद्धि के लिए एक अनुकूल परिवेश चाहिए होता है। पर्यावास ऐसे प्राकृतिक स्थान होते हैं जहां पौधें, जंतु और अन्य जीव रहते हैं, आहार प्राप्त करते हैं, संसर्ग करते हैं और सुरक्षा भाव से जीवनयापन करते हैं। मनुष्य का आवास किसी अनहोनी या आपदा के फलस्वरूप नष्ट हो जाए तो वह दोबारा रहने लायक घर बना लेता है। लेकिन वन्य जीव ऐसा नहीं कर सकते। पक्षी अपना घोंसला दोबारा बना लेता है मगर जंगल और पेड़ ही नहीं बचेंगे तो ये अपना घोंसला कहां बनाएंगे? इस लिहाज से पर्यावास को खोना वन्य जीवों के लिए संभवतः सब से बड़ी क्षति के समान है। जीवों के इन प्राकृतिक आवास में पर्याप्त भू या जल क्षेत्र, भोजन के स्रोत, पानी और आवश्यक भौतिक संरचना मौजूद रहते हैं जिनसे उन जीव जातियों का जीवन और अस्तित्व निरंतर कायम रहता है। यहां जिन भौतिक संरचनाओं की बात की गई है, उनमें शामिल अवयव होते हैं

चित्र–2:

वृक्ष, पहाड़ियां, मिट्टी, झील, तालाब और दूसरे जीवों से बना पारितंत्र। जीवों के साथ ही साथ भौतिक दशाएं (अजीव) भी वन्य जीवों के अस्तित्व के लिए जरूरी होती हैं और सभी परस्पर निर्भर होते हैं। इसलिए पारितंत्र में किसी भी एक अवयव का अकेले कोई वजूद नहीं होता ।

जब मनुष्य प्रकृति के स्थलीय या जलीय पर्यावास को नष्ट करके उसे अपने उपयोग में लेता है तो वहां के पारितंत्र में रहने वाले पेड़–पौधों के अलावा पशु–पक्षियों का अस्तित्व खतरे में आ जाता है। दुर्भाग्य है कि इस गंभीर मुद्दे पर हम बिल्कुल भी विचार नहीं करते। कृषि विस्तार, भवन व सड़क निर्माण और औद्योगिक विकास जैसी गतिविधियों के कारण विश्व भर के वन, दलदल, आर्द्रभूमि, नदियां आदि तेजी से समाप्त हो रहे हैं। मानव सभ्यता के आरंभ में पृथ्वी पर जितने वन हुआ करते थे, आज उसका आधा समाप्त कर दिया गया है। वृक्षारोपण के निरंतर प्रयास से इन्हें दोबारा हासिल किया जा सकता है लेकिन उसमें बहुत ज्यादा समय लगेगा क्योंकि वन उन्मूलन की दर वृक्षारोपण की दर से औसत रूप से दस गुना है।

वन्य जीवों के पर्यावास नष्ट होने के पीछे प्राकृतिक और मानवजनित दोनों तरह के कारण जिम्मेदार होते हैं। भूकंप, हिमपात, तूफान, भूस्खलन, आग और जलवायु परिवर्तन कुछ ऐसे प्राकृतिक कारण हैं जिनके द्वारा एक पृथक और स्थान विशेष के प्राकृतिक आवास नष्ट होते हैं। लेकिन मानवजनित कारणों का प्रभाव वैश्विक पैमाने पर और व्यापक भौगोलिक क्षेत्र के पर्यावास तथा उनके वन्य जीवों पर होता है।

बढ़ती मानव आबादी और उनकी जरूरतें वन्य जीवों का पर्यावास नष्ट करने के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार हैं। विगत 50 वर्षों के दौरान मानव आबादी दुगुनी हुई है और 7 अरब से अधिक इस आबादी के आवास व भोजन का दबाव प्रकृति तथा पर्यावास पर बढ़ा है। कृषि के लिए पृथ्वी के वनों का उन्मूलन करना वन्य जीवों का पर्यावास नष्ट होने का प्राथमिक कारण है। खेती करने, इमारती लकड़ी, ईंधन और वन उत्पाद हासिल करने के उद्देश्य से हर साल पूरे विश्व में तकरीबन एक लाख 77 हजार वर्ग किलोमीटर वनों को समाप्त किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार, 8 हजार साल की मानव गतिविधि के कारण पृथ्वी के लगभग आधे वन नष्ट हो गए हैं और वनों का यह विनाश पिछले कुछ दशकों के दौरान सर्वाधिक हुआ है। इमारती लकड़ी, ईंधन और वन उत्पादों के व्यापक दोहन के लिए वनों का उन्मूलन वहां रहने वाले वन्य जीवों के प्राकृतिक घर उजाड़ने में कोई कसर नहीं छोड़ता।

मानव गतिविधियों के कारण भूमि पर पाए जाने वाले वन्य जीवों के अलावा जलीय जीवों के पर्यावास पर भी खतरा उत्पन्न हुआ है। पानी के जहाज, स्टीमर आदि से इंधन के रिसाव, विनाशकारी मत्स्य आखेट, गहरे ट्रालरों का प्रयोग और मूंगा–चट्टान के दोहन से समुद्र का समूचा पारितंत्र बर्बाद हो गया है। समुद्र तटीय भूमि में विकास व निर्माण कार्यों से वहां के पर्यावास नष्ट हुए हैं। तटीय इलाकों में मानव बस्तियों के विकास और घरों से निकलने वाले प्रकाश से कछुआ जैसे जलीय जीवों का जीवन चक्र बुरी तरह प्रभावित हुआ है।

जब कोई पर्यावास नष्ट होता है तो इसका नकारात्मक प्रभाव स्वाभाविक तौर पर वहां पाए जाने वाले सूक्ष्म जीवों, पौधों और छोटे–बड़े प्राणियों पर पड़ता है। इनकी आबादी प्रतिकूल वातावरण को कुछ अवधि तक झेलती रहती है। उसके बाद धीरे–धीरे ये संकटग्रस्त और दुर्लभ होते हैं और अंततः इनके विलोपन की संभावना बढ़ जाती है।

पर्यावास नष्ट होने की स्थिति में, पक्षी और उभयचर अधिकतर कहीं और विस्थापित होकर अपने अस्तित्व की रक्षा करने में सफल नहीं होते। वहीं दूसरी तरफ, हर एक प्राणी समुदाय के कुछ जीव विश्व के किसी क्षेत्र या स्थान विशेष में ही पाए जाते हैं। इनके पर्यावास नष्ट होने से इनके अस्तित्व को सब से बड़ा झटका लगता है। इनकी उत्तरजीविता के अवसर सिमट जाते हैं क्योंकि ये खास पारितंत्र में जीवनयापन करने के अभ्यस्त होते हैं। इस तरह ऐसी जीव जातियों का प्रकृति से विलोपन सुनिश्चित हो जाता है। भारतीय चीता, जंगली भैंस (ओरोक्स), सुमात्रा के गैंड़े और गुलाबी सिर वाले बत्तख ऐसे कुछ भारतीय उपमहाद्वीप के प्राणी हैं जो अब विलुप्त हो चुके हैं ।

जीव वैज्ञानिक जीव जातियों के विलोपन को जलवायु परिवर्तन जितना घातक मानते हैं । वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड के ताजा लिविंग प्लैनेट रिपोर्ट में कहा गया है कि 1970 से लेकर आज तक मानवीय हस्तक्षेप ने 60 प्रतिशत वन्य जीवों का अस्तित्व हमारी धरती से खत्म कर दिया है ।

एक अन्य ताजा अध्ययन के अनुसार, भारतीय उपमहाद्वीप की 50 से ज्यादा मछली की प्रजातियां अगले चंद वर्षों में पृथ्वी से लुप्त हो जाएंगी । पक्षियों की अनेक प्रजातियां जो विविध प्रकार के पर्यावासों में रहती हैं, उन पर भी विलोपन का खतरा है । वैज्ञानिकों के अनुसार, वर्षावनों में पाए जाने वाले उष्णकटिबंधीय आर्किड के अस्तित्व को भी गंभीर खतरा है । काकरोच, चूहे, दीमक जैसे कुछ ही जीव हैं जो मानवीय गतिविधियों से लाभ उठा कर मानव बस्तियों में रहने के आदि होते हैं और इनके पर्यावास नष्ट होने का प्रभाव इन पर नहीं होता । इस अध्ययन में इस बात की चेतावनी भी दी गई है कि वन्य जीवों का विलोपन पृथ्वी पर जीवन के लिए एक आपातकाल जैसी स्थिति के समान है और इस प्रक्रिया पर लगाम नहीं लगने से मानव सभ्यता और अस्तित्व को खतरा है । अभी यह हालत है कि धरती के जीवों को बचा लें या फिर मनुष्य अपने विलोपन के लिए तैयार रहे ।

गैंड़े और गुलाबी सिर वाले बत्तख ऐसे कुछ भारतीय उपमहाद्वीप के प्राणी हैं जो अब विलुप्त हो चुके हैं।

जीव वैज्ञानिक जीव जातियों के विलोपन को जलवायु परिवर्तन जितना घातक मानते हैं। वर्ल्ड वाइल्ड लाइफ फंड के ताजा लिविंग प्लैनेट रिपोर्ट में कहा गया है कि 1970 से लेकर आज तक मानवीय हस्तक्षेप ने 60 प्रतिशत वन्य जीवों का अस्तित्व हमारी धरती से खत्म कर दिया है ।के लिए तैयार रहे ।

समुद्री प्रजातियां अत्यावश्यक पारिस्थितिकी तंत्र प्रदान करती हैं। प्लैंकटन वातावरण में ऑक्सीजन का प्रसार करते हैं और 3 अरब से अधिक लोगों की जीविका और जीवन समुद्री और तटीय जैवविविधता पर निर्भर है। समुद्री और तटीय संसाधनों और उनके सहयोग से चलने वाले उद्योगों का मूल्य कम से कम 3 खरब अमेरिकी डॉलर अनुमानित है जोकि विश्वव्यापी जीडीपी का लगभग 5 प्रतिशत है।

सतत विकास लक्ष्य का 14वां लक्ष्य समुद्री और तटीय पारिस्थितिकी का सतत प्रबंधन और संरक्षण करना है। वर्तमान दौर में समुद्री जीव–जंतु अत्यंत दबाव में है। उन पर जलवायु परिवर्तन और प्रदूषण का बहुत अधिक असर हुआ है। तटीय प्रजातियां विलुप्त होने की कगार पर हैं और उनका अत्यधिक दोहन किया जा रहा है। एक तिहाई वाणिज्यिक मत्स्य भंडार इसीलिए समाप्त हो गया है क्योंकि मछलियों को लगातार पकड़ा जाता है। दूसरी ओर अन्य कई प्रजातियों, एलबेट्रॉस जैसे बड़े समुद्री पक्षियों से लेकर कछुओं तक पर महासागरीय संसाधनों के गैर सतत उपयोग के कारण संकट मंडरा रहा है।

सुखद समाचार यह है कि इस समस्या का समाधान मौजूद है। उदाहरण के लिए जिन स्थानों पर मत्स्य उद्योग का वैज्ञानिक तरीके से प्रबंधन किया जाता है, वहां मत्स्य भंडार की पुनःप्राप्ति की संभावना होती है। वनस्पति और जीव–जगत की विलुप्त प्रजातियों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार पर केंद्रित समझौता (सीआईटीईएस) समुद्री प्रजातियों के विनियमन में वृद्धि कर रहा है। जबकि जैविक विविधता समझौता (सीबीडी) 2020 के पश्चात विश्वव्यापी जैवविविधता संरचना तैयार करने में संलग्न है।

हमें अक्सर तेंदुआ, बाघ, भालू जैसे वन्य जीवों के मानव बस्तियों में घुस आने की खबर सुनने को मिलती है। कई तेंदुए, बाघ और लकड़बग्घा तो आदमखोर बन जाते हैं। एक बात तो तय है कि ये जीव अनायास मानव बस्तियों की ओर रुख नहीं करते। इसमें कोई संदेह नहीं कि इनके पर्यावास तेजी से नष्ट हो रहे हैं और ये परेशान होकर मानव आबादी की तरफ आ रहे हैं। मानव आबादी अपने रहने, खेती और कार्य क्षेत्र का विस्तार करते हुए वन्य जीवों के पर्यावास (वन, पर्वत आदि) पर हस्तक्षेप करने लगते हैं जिससे मानव और वन्य जीवों का संघर्ष आरंभ हो जाता है। इस मानवीय हस्तक्षेप से वन्य जीवों के पर्यावास उजड़ जाते हैं, उन्हें भोजन की कमी होती है जिस कारण वे मानव बस्तियों की ओर बढ़ते हैं। मनुष्य ने पहली बार जब कृषि और पशुपालन शुरू किया था तभी से इस संघर्ष का आरंभ हो गया था। इस संघर्ष के अनेक दुष्परिणाम सामने आते हैं जिनमें मनुष्य और वन्य जीव दोनों प्रभावित होते हैं। इसमें मनुष्य और वन्य जीव का घायल होना या मृत्यु भी हो जाना सम्मिलित है। इस संघर्ष के परिणामस्वरूप फसल नष्ट हो जाती है, पालतू पशु मारे जाते हैं और संपत्ति का नुकसान होता है।

वन्य जीव और मनुष्य के संघर्ष को कम करने के लिए वैश्विक स्तर पर अनेक प्रयास और प्रबंधन के उपाय अपनाए जा रहे हैं। इन उपायों में इलेक्ट्रिक फेंसिंग, समुदाय आधारित प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन और अन्य स्थलीय समाधान उपाय अपनाए जाते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय तस्कर बाजार में वन्य–जीवों के शरीर के विभिन्न अवयवों की मुँह मांगी कीमत मिलने से आदमी मानव से पशुखोर बन गया है। पैसों की चकाचौंध में वह इतना अंधा और विवेकहीन हो गया है कि उसे इस बात का ख्याल ही नहीं रहा कि उसके स्वयं के अस्तित्व के लिये हवा, पानी, मिट्टी, पेड़–पौधों के साथ–साथ अन्य वन्य–पशु–पक्षियों का जीवित रहना भी आवश्यक है। मूक निरपराध प्राणियों की हत्या से अनेकों वन्य जीव प्रजातियाँ लुप्त हो गई हैं व बहुत सी प्रजातियाँ लुप्त होने के कगार पर हैं। विश्व में वन्य–जीव प्रजातियों के लुप्त होने की दर तीन जीव प्रति घंटा है। लुप्त होने की इस द्रुत गति से अनुमान लगाया जा रहा है कि सन् 2115 तक वर्तमान में पायी जाने वाली समस्त प्रजातियों का एक चौथाई हिस्सा समाप्त हो जाएगा। वन्य–जीव कोष ने बाघ, भारतीय गेंडा, काला हिरण, काला भालू, साइबेरियन सारस आदि जैसे 10 वन्य जीवों की एक सूची तैयार की है जिन्हें सर्वाधिक सुरक्षा की आवश्यकता है। वन्य प्राणियों को हिंसक मानवों से बचाने के लिये विश्व स्तर पर सरकारी व गैर सरकारी संगठनों द्वारा हर संभव सुरक्षात्मक प्रयास किये जा रहे हैं। आवश्यकता है हर व्यक्ति को इन निर्दोष वन्य जीवों के जीवन बचाने की जिम्मेदारी निभाने की।

वन्य जीवों के विलुप्त होने के मुख्यतः दो कारण हैं –

1. जनसंख्या वृद्धि के कारण वनों की अंधाधुंध कटाई जिसका सीधा असर वन्य जीव प्रजातियों के जीवन पर पड़ा।

2. पैसा कमाने के लिये वन्य–जीव अवयवों की बढ़ती तस्करी ।

हमारे देश में ही नहीं विश्व के अनेक देशों की विकृत मानसिकता का ही परिणाम है कि नीम हकीमों, ओझा तांत्रिकों, शौकीन शिकारियों व रईसों के बैठकखानों की

शोभा बढ़ाने के लिये तस्करों द्वारा वन्य–जीव जन्तुओं की चोरी छिपे निर्ममता से हत्या की जाती है ताकि इनके शरीर के विभिन्न अवयवों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बेचकर भारी मुनाफा कमाया जा सके। आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी अंधविश्वासियों व पढ़े लिखे मूर्खों की कमी नहीं है जो विभिन्न रोगों के इलाज व युवा बने रहने के लिये इन नीम हकीमों के झांसे में आ जाते हैं और निरीह मूक प्राणियों के अवयवों को दवाई के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसी प्रकार ओझाओं और तांत्रिको के चंगुल में फंसे लोग टोने–टोटके के लिये वन्य–जीव अवयवों का उपयोग करते हैं। अमीरों के ड्राइंग रूम में लगे मूक प्राणियों के चेहरे, सींग और शरीर की खाल मानव ह्रदय की क्रूरता का खुला बखान करते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में इन अंगो का मुंह मांगा दाम मिलने से यह अवैध व्यापार 20 हजार करोड़ डालर से भी ऊपर पहुँच चुका है। तस्कर बाजार में एक बाघ के चमड़े का मूल्य 7 से 10 लाख रुपये, बाघ की एक जोड़ी आँखे 6000 से 7000 रुपये, शेर या बाघ की एक किलो हड्डियाँ 78 से 80 हजार रुपये, गेंडे के एक किलो सींग 18 लाख 60 हजार रुपये, हाथी के एक किलो दांत 6500 रुपये, तेंदुआ की खाल 6 लाख 20 हजार रुपये में बिकती है। इसी प्रकार हिरण, काला हिरण, काला भालू आदि की भी हत्या कर तस्करी की जाती है ।

वन्य जीवों की सुरक्षा के लिये समय–समय पर सरकार द्वारा नियम कानून बनाये गये ताकि पारिस्थितिक तंत्र के इस आवश्यक घटक की रक्षा कर इस तंत्र के संतुलन को बिगड़ने ना दिया जा सके। वन्य जीवों की सुरक्षा के लिये सन् 1952 में सरकार द्वारा एक योजना बनाई गई उस समय विलुप्त हो रही वन्य जीव प्रजातियों की सँख्या 13 थी जो बढ़कर आज 137 की सँख्या को भी पार कर गई है। इस सँख्या के मद्देनजर सरकार द्वारा सन् 1972 में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम बनाया गया। इसी तरह वन्य–जीवों के प्राकृतिक आवास वनों की सुरक्षा के लिये सन् 1980 में वन संरक्षण अधिनियम और सन् 1988 में वन संरक्षण अधिनियम (संशोधन) के अन्तर्गत अनेकों कानून बनाये गये। इसी प्रकार सन् 1991 में वन्य जीव संरक्षण अधिनियम (संशोधन) के अन्तर्गत वन्य जीवों की हत्या और तस्करी रोकने के लिये बहुत से कानून बनाये गये। परन्तु इन कानूनों में इस बात पर अधिक बल दिया गया कि केवल सरकार ही वन और वन्य–जीवों की सुरक्षा का काम कर सकती है जबकि जन सहयोग के बिना प्राकृतिक सम्पदा का संरक्षण मुश्किल ही नहीं असंभव है। सरकार द्वारा बनाये गये इन कानूनों का उद्देश्य है कि:

1. विलुप्त होती वन्य–जीव प्रजातियों की सुरक्षा करना
2. वन्य–जीव प्रजातियों के अवयवों के अवैध व्यापार को नियंत्रित करना।
3. देश के संरक्षित क्षेत्रों जैसे राष्ट्रीय उद्यानों, अभ्यारण्यों व प्रतिबधित क्षेत्रों की कानूनी सहायता करना

कानूनों के पालन में आनेवाली कठिनाईयाँ:

1. विभिन्न राज्यों के वन विभाग, वन्य–जीव विभाग आदि वन क्षेत्रों में तो वन्य जीवों व अन्य जीव उत्पादों के अवैध व्यापार का प्रभावी नियंत्रण कर सकते हैं परन्तु वन क्षेत्रों से बाहर जैसे निकासी स्थान, बन्दरगाह, अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं, बाजार आदि स्थानों पर कर्मचारियों एवं जानकारी के अभाव में कानूनों का पालन नहीं करा सकते। इन स्थानों पर प्रभावी नियंत्रण के लिये अन्य विभागों ऐजेन्सियों का सहयोग आवश्यक है।

2. बहुत बड़ा भू– क्षेत्र होने के बावजूद भी भारत में वन्य जीवों व पारिस्थितिकीय संरक्षण के लिए केवल 80 राष्ट्रीय उद्यान तथा 44 वन्य–जीव अभ्यारण्य हैं जो मात्र 1487000 वर्ग किलो मीटर क्षेत्र में फैले हैं जो देश के भौगोलिक क्षेत्रफल का मात्र 4 प्रतिशत ही हैं।

निष्कर्ष के रूप में इस बात पर बल दिया जा सकता है कि हमारी पृथ्वी एक है और इस पर जीवन का अनोखा संयोग है। प्रकृति के सभी अवयव जिसमें वनस्पति, जीव–जंतु और मनुष्य आते हैं, ये सब एक दूसरे पर निर्भर होते हैं तथा इनका आपस में सह अस्तित्व है। हमें अपनी जीवनदायिनी पृथ्वी और इसके जीवों के निरंतर अस्तित्व को बनाए रखने के लिए अपने विवेक से काम लेना होगा। इसी में समूचे जीव जगत की भलाई है और यही मानवता है।

राजेश कुमार मिश्रा
सहायक मुख्य
तकनीकी अधिकारी

जुलाई–दिसंबर, 2020 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम

राष्ट्रीय वन महोत्सव

दिनांक 17 जुलाई 2020 को केंद्रीय विद्यालय आईटीबीपी, देहरादून में वन महोत्सव कार्यक्रम का आयोजन किया गया। श्री अरुण सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. ने इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में वैश्विक मंच पर वृक्षारोपण और देश की प्रतिबद्धता के बीच संबंध पर जोर देते हुए सभा को संबोधित किया। उन्होंने विद्यालय के प्राधिकारी द्वारा प्रकृति और बच्चों के बीच संबंधों को और मजबूत करने के लिए किए गए प्रयासों की भी सराहना की। श्री संजय कुमार, प्रधानाचार्य, केंद्रीय विद्यालय आईटीबीपी ने परिसर में विकसित किए जा रहे हर्बल गार्डन के बारे में जानकारी साझा की। संस्थान के विस्तार प्रभाग एवं वन संवर्धन एवं प्रबंधन प्रभाग की टीम ने आपस में समन्वय रखते हुए कार्य किया और कार्यक्रम को सफल बनाया।

स्वतंत्रता दिवस

15 अगस्त, 2020 को वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून में मुख्य भवन के प्रांगण में 74वां स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में श्री अरुण सिंह रावत,. महानिदेशक भा.वा.अ.शि.प. द्वारा झण्डा रोहण किया गया। कार्यक्रम में आई.सी.एफ.आर.आई. एवं एफ.आर.आई. के सभी अधिकारीगण, वैज्ञानिक, कार्मिक अपने परिवार के साथ उपस्थित रहें।

वन शहीद दिवस

दिनांक 11 सितंबर, 2020 को वन शहीद दिवस के उपलक्ष्य पर संस्थान के परिसर में स्थित वनपाल शहीद स्मारक पर श्री अरुण सिंह रावत, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. ने पुष्प सुमन अर्पित किए। यह दिवस वनों तथा वन्यजीव की सुरक्षा हेतु अपना बलिदान करने वाले वनरक्षकों की याद में मनाया जाता है।

गांधी जयंती

संस्थान में दिनांक 02 अक्तूबर, 2020 को गांधी जयंती मनाई गई। दीक्षांतगृह में कार्यक्रम के आरंभ में श्री अरुण सिंह रावत, महानिदेशक भा.वा.अ.शि.प., ने दीप प्रज्वलित किया एवं राष्ट्र पिता महात्मा गांधी जी को श्रद्धा सुमन अर्पित किए।

जुलाई – दिसंबर, 2020 के अंतर्गत संस्थान द्वारा आयोजित प्रमुख कार्यक्रम

सरदार वल्लभ भाई पटेल की जयंती

दिनांक 31 अक्तूबर, 2020 को सरदार वल्लभ भाई पटेल जी की 145 वीं जयंती मनाई गयी। इस अवसर पर महानिदेशक महोदय ने सरदार पटेल जी के चित्र पर सादर सुमन अर्पित किए। इसके उपरांत सभी प्रभाग प्रमुखों द्वारा भी उनके चित्र पर पुष्प अर्पित किए। महानिदेशक द्वारा समस्त प्रभाग प्रमुखों को राष्ट्रीय एकता एवं इसकी आंतरिक सुरक्षा बनाए रखने हेतु कार्य करने की शपथ दिलाई गई।

संविधान दिवस

26 नवम्बर, 2020 को संस्थान द्वारा संविधान दिवस मनाया गया। प्रतिवर्ष की भांति संविधान दिवस पर डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचारधारा को जनमानस तक पहुँचाने तथा भारत के संविधान के महत्व को समझने एवं सरकारी कार्मिकों को संवैधानिक नियमों का अनुपालन करने के उदेश्यों से संस्थान निदेशक, श्री अरुण सिंह रावत, ने सभी प्रभाग/प्रमुखों को मुख्य भवन के दीक्षांतगृह में शपथ दिलाई। इस अवसर पर डॉ. पारुल दीक्षित, हेड एण्ड एसोसिएट प्रोफेसर, विधि डी.ए.वी. (पीजी) ने संवैधानिक मूल्यों पर व्याख्यान दिया।

हिंदी पखवाड़ा, 2020

संस्थान के हिंदी अनुभाग के सौजन्य से कार्यालय में 01 से 14 सितम्बर, 2020 तक हिंदी पखवाड़े का आयोजन किया गया। इस पखवाड़े के दौरान आयोजित हिंदी टकंण, टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, निबंध लेखन तथा स्वरचित कविता प्रतियोगिता में संस्थान के कर्मचारियों ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया।